# प्रथम अध्याय

# मैत्रेयी पुष्पा व्यक्तित्व एवं कृतित्व

# प्रथम अध्याय

## मैत्रेयी पुष्पा : व्यक्तित्व और कृतित्व

**1.1 मैत्रेयी पुष्पा का व्यक्तित्व निर्माण**

**1.2 मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य संसार**

1.2.1 उपन्यास साहित्य

1.2.2 कहानी संग्रह

1.2.3 नाटक

1.2.4 निबंध संग्रह

1.2.5 आत्मकथा

1.2.6 संस्मरण

**1.3 सम्मान एवं पुरस्कार**

## प्रथम अध्याय

## मैत्रेयी पुष्पा : व्यक्तित्व कृतित्व

किसी भी रचनाकार का व्यक्तित्व उसकी रचनाओं से परिलक्षित होता है। उसका व्यक्तित्व उसके शारीरिक, मानसिक और व्यवहारिक विशेषताओं का समावेश होता है। इसलिए किसी भी रचनाकार या साहित्यकार के कृतित्व को ग्रहण करने से पूर्व उसके व्यक्तित्व को जानना अतिआवश्यक है। जिसमें रचनाकार का संपूर्ण जीवन चलता है। उसके साथ सामाजिक जीवन चित्रित करता है। व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। रचनाकार के व्यक्तित्व पर हम पारिवारिक संस्कार, नैतिक मूल्य और युगीन परिस्थितियों का प्रभाव देख सकते हैं। “लेखक का जीवन तथा संस्कार, जीवनानुभूति का प्रतिबिंब रचना में होता है। इसीलिए साहित्य समीक्षा की दृष्टि से लेखक के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन आवश्यक है।"[1]

### 1.1 मैत्रेयी पुष्पा का व्यक्तित्व निर्माण

नब्बे के दशक में जिन रचनाकारों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई और जिन पाठकों ने हाथों-हाथ लिया इनमें मैत्रेयी पुष्पा का नाम प्रमुख है। मैत्रेयी पुष्पा का जो व्यक्तित्व बना है उसका परिचय उनके आत्मकथात्मक उपन्यास ‘कस्तूरी कुंडल बसै’ और ‘गुड़िया भीतर गुड़िया' से मिलता है। पुष्पा जी ने अपने जीवन में बहुत कष्ट उठाए इसीलिए इनका व्यक्तित्व दबंग बना। रेक्स रांक के अनुसार "व्यक्तित्व समाज द्वारा मान्य तथा अमान्य गुणों का संतुलन है।”[2]

### जन्म और माता-पिता

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवंबर 1944 ई. में अलीगढ़ जिले के सिकुर्रा गांव में (उत्तर प्रदेश) विपन्न और निम्न मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनकी माता का नाम कस्तूरी था। वह अभावग्रस्त ब्राह्मण परिवार की छोटी लड़की थी। पुष्पा जब 18 महीने की थी, तभी उनके पिता का देहांत हो गया। कस्तूरी, पति के साथ सती नहीं हुई बल्कि ढाई मील दूर इगलास की पाठशाला में पढ़ने जाती थी। डॉ. शशिकला त्रिपाठी "कस्तूरी वैधव्य प्राप्ति पर लोकाचार नहीं, सती रेशम कुंवर की छवि से आतंकित होने के कारण श्वेत वस्त्रधारण करती है लेकिन वह रोती

बिलखती नहीं। 'कठकरेजी लुगाई' का विशेषण पाकर किताबों का झोला उठा लेती है।"[3] उनके क्रांतिकारी कदमों का उसकी मां तक विरोध करती हैं। कस्तूरी लोगों की, मां की बातों से टूटती बिखरती नहीं। हीरा की विधवा होने के कारण खेत पर उसी का अधिकार था लेकिन कस्तूरी अपना जीवनयापन खेती के सहारे न करके पढ़-लिखकर ग्राम सेविका बन जाती है। बहुत सारी कठिनाइयों को सहकर वह अपनी मंजिल पा लेती है। कस्तूरी गांव वालों के लिए गौरव की पात्र बन जाती है। इस बहादुर दृढ़संकल्पी, लग्नशील, ज्ञानपिपासु एवं संघर्षशील मां की बेटी के रूप में मैत्रेयी है ।

**बचपन और शिक्षा**

मैत्रेयी ने बाल्यकाल से ही संघर्षमय जीवन बिताया है। वह जाट यादवों के यहां पली। उनका सारा बचपन बुंदेलखंड में बीता। वह माता-पिता के प्यार से अछूत रहीं। बचपन से ही मां के प्यार के लिए तरसती रही, वह उसे नहीं मिल पाया। गांव की लड़कियों को जो सुरक्षा प्राप्त होती है, वह भी नहीं थी। मैत्रेयी का बचपन घोर आर्थिक संकटों तथा विकट परिस्थितियों में गुज़रा। अमरीक सिंह दीप से हुई बातचीत में मैत्रेयी कहती हैं ''आदमी सारी उम्र भूल जाता है लेकिन बचपन नहीं भूलता। तो बचपन ऐसी निश्छल चीज़ है जो अभी तक याद है।''[4] कस्तूरी नौकरी करने के लिए गांव-गांव जाती थी और मैत्रेयी को परिचितों के सहारे छोड़ कर जाती थी। उसकी परवरिश का तरीका नितांत अपारंपारिक अव्यवहारिक था। बचपन की बढ़ती उम्र में जो संस्कार तथा माहौल एक लड़की के लिए आवश्यक होते हैं, वे मैत्रेयी को नहीं मिल सके। बचपन से ही वह गांव की पुरोहितानी, खैरापतिन और बूढ़ी काकी कलावती के साथ रही। वह जिस घर में रहकर पढ़ रही थी, वह लड़की होने के कारण उसके लिए पराया साबित होता था। वहां पर उसका कोई नहीं था। कस्तूरी हर हालत में मैत्रेयी को पढ़ाना चाहती थी। हर दो साल के बाद मैत्रेयी का स्कूल बदला जाता था। लड़की होने के कारण उसे हर जगह प्रताड़ित होना पड़ा था। एक घर के बाद, दूसरा। यह सिलसिला मैत्रेयी के जीवन में जारी रहता था। कभी-कभी पढ़ाई में रुकावट भी आती थी। अनुभवों के कारण ही वह कठिनाइयों से छुटकारा पाती थी। सिकुर्रा, खिल्ली में बड़ी होती मैत्रेयी को समाज या स्त्री-पुरुष संबंधों का जितना गहन अनुभव है, उतना

मां-बाप के साये में सुरक्षित चक्कर में लालन-पालन होने वाली युवती के लिए जीवन भर संभव नहीं। अश्लील, अभद्र अनुभवों के साथ-साथ कई युवकों के प्रति उसके मन में प्रेम भी जागता है। अतएव दैहिक और मानसिक ज़रूरतों का हक मांगने वाली हठी युवती के रूप में मैत्रेयी दिखाई देती है। नारी अतिवादिता अर्थात पुरुष विरोधी वह कतई नहीं थी। जिस स्कूल में वह पढी, वहां 500 लड़कों में अकेली लड़की थी। लड़कों के बीच ही पली इसीलिए लड़का-लड़की में कोई भेद नहीं मानती है। कॉलेज पढ़ने वाली मैत्रेयी को मकानमालिक की आपत्ति अनुचित लगती है कि उसके सहपाठी उसके कमरे में क्यों आते हैं? बचपन से जिन पुरुषों के संपर्क में मैत्रेयी आई, उन सबने उसका यौन शोषण किया। साइकिल वाले जगदीश से लेकर डी.ए.बी. इंटर कॉलेज के प्राचार्य तक। उसका शोषण का क्रम चलता रहा। उसकी दृष्टि से कोई पुरुष इसका अपवाद नहीं था। इसी कारण बचपन से गिद्धदृष्टियों को झेलती असुरक्षित मैत्रेयी को विवाह अनिवार्य लगता है। वह विवाह के लिए संघर्षशील दिखाई देती है। उनके अनुभव से उन्हें लगता है कि प्रेम और विवाह, देह और देह की भूख मिटाने का यज्ञ है। वह अपनी मुक्ति तथा सुरक्षा विवाह में देखती है इसीलिए सुरक्षा हेतु मां से कहती है "माता जी मेरी शादी कर दो।"[5]

मैत्रेयी पुष्पा की मां कस्तूरी का सपना था कि मैत्रेयी पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ी हो जाए। उनका बचपन खिल्ली तथा बुंदेलखंड के झांसी गांव के नज़दीक बीता था। इसी कारण उनकी आरंभिक शिक्षा जिला झांसी के खिल्ली गांव में हुई। एम.ए. हिंदी की शिक्षा उन्होंने बुंदेलखंड कॉलेज झांसी में पूरी की।

**स्वभाव**

बुंदेलखंड में जन्मी और पली-बढ़ी मैत्रेयी पर बुंदेलखंडी वातावरण का प्रभाव दिखाई देता है। शुरू से ही स्वभाव शांत था। मिलनसार स्वभाव की मैत्रेयी में दूसरों की मदद करने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती थी। उनसे मिलने वालों का स्वागत वह सुंदर मुस्कान के साथ करती हैं। निडर, सीधी-सीधी तथा अपनी बात स्पष्टता से कहने का साहस मैत्रेयी में है। उसके इरादे मज़बूत हैं। वह सभ्यता का घूंघट ओढ़ कर लोगों से स्तुति नहीं पाना चाहती बल्कि सच्चाई को न छुपा कर परिस्थितियों का सामना करती है। अन्याय का प्रतिकार करती है। मैत्रेयी,

प्रिंसिपल के खिलाफ अन्याय का विरोध करने के लिए आमरण अनशन पर बैठी थी, वह न तो मैनेजमेंट के पास बयान देने गई थी, न प्रिंसिपल से माफ़ी मांगी थी। निडर मैत्रेयी ने झूठा इल्जाम, अत्याचार, बदनामी सहने से स्कूल छोड़ना उचित माना था। मैत्रेयी अंग्रेजी के प्रोफेसर दरबारी साहब से प्रश्न पूछ कर सारी क्लास को ही नहीं, दरबारी साहब को भी सोचने के लिए मज़बूर करती थी।

'बाड़े की औरतों के लिए' शीर्षक कविता दैनिक जागृति के रविवारीय अंक में छपवाने का साहस किया था। मैत्रेयी अधिकार चेतना संपन्न उन्मुक्त नारी है। उसके जीवन में झूठ और छल के लिए कोई स्थान नहीं, जो कुछ है- स्पष्ट और खुला हुआ। फिर सहानुभूति के नाम पर बेईमानी नहीं करना चाहती। मां कस्तूरी के विचारों का प्रभाव मैत्रेयी पर दिखाई देता है। उनके विद्रोही प्रवृत्ति के संस्कारों के कारण स्त्री को न्याय देने की बात मैत्रेयी के उपन्यासों में आना स्वाभाविक है। मैत्रैयी स्त्री को उसका हक दिलाना चाहती हैं। वह पुरुष वर्चस्व को तोड़कर समान अधिकार चाहती हैं। स्त्रियों को अन्याय के खिलाफ़ जागृत करने का प्रयास अपने साहित्य में करती हैं। मैत्रेयी में आत्मविश्वास, शिक्षा की चमक और तेजस्विता है। इनके व्यवहार में छोटे-बड़े का कोई भेदभाव नहीं  है। सबको स्नेह, आदर, मान देना उनके स्वभाव में शामिल है। उनका हृदय इतना विशाल है कि जिन्होंने उनके साथ दुर्व्यवहार किया है, उन्हें भी वह माफ़ कर देती हैं। इतना ही नहीं, उनकी भलाई चाहती हैं। मैत्रेयी के बारे में डॉ. दया दीक्षित ने लिखा है- "ये है मैत्रेयी पुष्पा बोल्ड, प्रखर अपने नाम के जैसी, सभी की मित्र, मैत्रेयी-सी विदुषी। पुष्प सी सुंदर, सुकोमल मन, सुकुमार देहयष्टि, ताज़गी से भरपूर। अपने गुणों की प्रखर प्रतिभा विद्वता की गुण सुगंधि बिखेरती हुई ऐसी जीवनोर्जा से भरपूर कुसुमाकृति। जो संपर्क में आने वाले को रचनात्मक ऊर्जा से भर दे।"[6]

## विवाह तथा परिवार

बचपन से असुरक्षित माहौल में पली-बढ़ी मैत्रेयी सुरक्षित वातावरण में रहना चाहती थी। जीवन में स्थायित्व चाहती थी। इसी उद्देश्य से वह बी.ए. में पढ़ते समय मां से शादी की अपील करती हैं। शादी की बात सुनकर मां कस्तूरी के सारे संकल्प, सारे सपने टूट जाते हैं। वह बेटी को शिक्षित, स्वाबलंबी बनाना चाहती थी। उसे लगता है कि बेटी की परवरिश में वह असफल हो गई है। विवाह

का विरोध करते हुए कस्तूरी समझाती है ‘‘तुम मुझे गलत समझ रही हो। मेरा मतलब यह नहीं कि विवाह बुरी चीज़ है...यह औरत के लिए ऐसे बंधन पैदा करता है जो जीवन भर कसे रहते हैं। पति के रहने पर भी और न रहने पर भी। पति की पसंद, नापसंद दोनों औरतों पर ही भारी पड़ती हैं।"[7] कस्तूरी प्रगतिशील विचारधारा की स्त्री है। वह ग्रह कुंडली के बदले लड़के की डिग्री और पेशे के बल पर शादी करना चाहती थी। असल में सब जगह उसका अपमान हो जाता है। एक विधवा होने के नाते और अपने नए विचारों के नाते। पढ़ी-लिखी होने पर भी दहेज़ देकर मैत्रेयी की शादी इंजीनियर अयोध्यासिहं से तय होती है। मैत्रेयी बचपन से ही दहेज़ के ख़िलाफ़ है। दहेज़ के प्रति उनके स्वस्थ विचार के कारण रिश्ता टूट जाता है। पुनः उसका विवाह डॉ. रमेशचंद्र शर्मा से होता है लेकिन सतमासी बेटी होने पर मैत्रेयी शक के घेरे में आ जाती है। तब वह सोचती है:- "मेरे पति भी अपने वंश और पीढ़ियों के प्रति खुद को 'सत्यानाश' का अपराधी मान रहे हैं। यह क्या हो गया? जो पुरुष स्वयं इस बच्ची का पिता होने में हिचक मान रहा हो, उसे वह पति भी कैसे माने ?"[8] मैत्रेयी में स्वतंत्रता और समानाधिकार के प्रति स्वयं ही सजगता और तार्किकता आ जाती है। उसमें अन्याय का प्रतिकार करने का साहस है। विवाह के उपरांत पति के घर संपन्न परिवार की महिला होने का भाग्य प्राप्त हुआ। मैत्रेयी अपने पति के साथ दिल्ली में रहती हैं। दिल्ली में ही और बाद में नोएडा में पति के साथ रहते हुए तीन बेटियों को पालते हुए, कुछ अलग बनने और कर गुज़रने की चाह उनमें थी। बेटी के जन्म पर दूसरी ओर तीसरी बेटी को दुर्भाग्य की श्रेणी में रखा गया तो खुद मैत्रैयी ने अपने मन की व्यथा व्यक्त करते हुए कहा था "क्रूरता यहां भी ऐसी है कि मेरी बच्ची के जन्म का अभिनंदन 'कोई बात नहीं' कह कर किया जा रहा है। यहां डरावनी शिष्टचारी है।"[9] पति डॉ. रमेशचंद्र शर्मा की ओर से तीसरी बेटी होने पर मानसिक दृष्टि से टूटती हुई मैत्रेयी का हाथ उनकी बेटियों नम्रता और मोहिता ने थामा था। निम्न वर्ग में जन्मी मैत्रेयी ने जीवन के कटु अवसर देखे थे। शादी के बाद भी समाज, परिवार में अनेक अवसर आए, फिर भी साहसी मैत्रेयी ने हिम्मत नहीं हारी। इसी कारण आज उनका परिवार सुखी तथा संपन्न है। उन्होंने अपनी तीन बेटियों को डॉक्टर बनाया है। डॉक्टर नम्रता और मोहिता यू.एस.ए. में कार्यरत हैं तथा सुजाता एम्ज में रिसर्च का काम करती है। मैत्रेयी के साथ रहते-रहते उनके पति के

विचारों में भी परिवर्तन आ गया है। इसी कारण उनके पति 'गुड़िया भीतर गुड़िया' कृति पढ़कर सबसे ज्यादा खुश हुए।

**पति-पत्नी के संबंध**

विवाह से पहले मैत्रेयी अपने मां के कठोर नियंत्रण एवं निर्देशन के कारण परेशान रहती थी। विवाह के बाद अपने पति के कठोर नियंत्रण के कारण और ज्यादा परेशान एवं व्यथित रहने लगी। विडंबना यह कि मां से परेशान होकर तो वे विवाह करके पति के पास चली गई, पर पति से परेशान होकर कहां रहती? मैत्रेयी पति की वास्तविकताओं को उजागर करती हुई लिखती हैं:- "पति के साथ असलियत में पत्नी का वह रोल नहीं, जो फेरों के समय वचनों के रूप में निभाया जाता है। वादे होते हैं, सहभागिता और एक-दूसरे की इच्छा और ज़रूरत का सम्मान निभाने के कौल किए जाते हैं। सब झूठ। सब फरेब। असलियत में हमारा रोल पति की खादिमा, दासी और गुलाम होना है।"[10] मैत्रेयी ने विवाह से पहले अपने पति का ऐसा सपना नहीं संजोया था बल्कि मैत्रेयी पुष्पा तो अपने पति को एक साथी, सखा के रूप में देखना चाहती थी। मैत्रेयी ने 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में वैवाहिक जीवन की घुटन का सिलसिलेवार और स्वाभाविक वर्णन किया है। कहा जा सकता है कि डॉ. रमेशचंद्र शर्मा से उनका संबंध एक बेमेल विवाह था। जिसमें पत्नी की विकास यात्रा में पति का कोई सहयोग नहीं था। मैत्रेयी पुष्पा पी.एच.डी करना चाहती थी पर हर संभव तरीके से इन्हें रोक दिया गया।

वह संवेदनाओं और प्यार जैसी भावनाओं को आवश्यक मानती हैं। मानसिक रूप से स्वतंत्र होकर जीना पसंद करती हैं। अपने कर्तव्य के प्रति दक्ष है। वह बचपन से ही स्त्री-पुरुष भेद नहीं मानती। पत्नी के नाम पर झूठे उसूलों को ढोना नहीं चाहती, समानाधिकार चाहती हैं। वह दूसरी पत्नियों की तरह सेवा नहीं करती। पति के बाहर चले जाने पर वह खुद को स्वतंत्र महसूस करती हैं। मैत्रेयी का एक उपन्यास दांपत्य जीवन की कटुता यानी पति के गुस्से का शिकार हो गया था। पूरा उपन्यास उन्हें दोबारा लिखना पड़ा था। जिससे मैत्रेयी इतनी दुखी हुई थी, उनके मन में आता है कि उनके पति का देहांत हो जाए। वे विवाह के संताप से मुक्त होना चाहती थी। मैत्रेयी पुष्पा में जद्दोजेहद करने की क्षमता चाहे जितनी हो,

उनके संस्कार इस तरह के नहीं हैं कि वह अपने वैवाहिक संबंध को अकारण त्यागकर स्वतंत्र जीवन जीने की शुरुआत कर सके। मैत्रेयी ने नित्य जीवन रूढ़ियों को तोड़ा था। ''एक तो करवा चौथ का व्रत छोड़ चुके थे, दूसरे मैंने कुछ दिन पहले ही बिछिया उतार दिए थे। सुहागचिन्ह कांच की चूड़ियां भी रास नहीं आई मुझे।"[11] धीरे-धीरे डॉक्टर साहब में भी बदलाव आता है और मैत्रेयी को उनकी महानता का सबूत मिलता है।

**लिखने की प्रेरणा**

लिखने की प्रेरणा आंतरिक ही होती है। मैत्रेयी का साहित्य के प्रति पहले से ही रुझान था। मैत्रेयी की शिक्षा जहां पर हुई, वह एक साहित्यिक नगरी थी। मैथिलीशरण गुप्त तथा रामकुमार वर्मा का साहित्य पढ़ते-पढ़ते उनके समानांतर चित्र उनके आंखों के सामने उभरते जाते थे। बचपन में सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं से प्रेरित होती हैं। शादी के लगभग 25 साल बाद लिखना शुरू किया। मैत्रेयी पुष्पा को बचपन से ही कविता उस समय अच्छी लगती थी, जब उनके साथ के बच्चे कविता का अर्थ भी नहीं समझते थे। मैत्रेयी पुष्पा से उजैन खां की अंतरंग बातचीत में मैत्रेयी जी कहती हैं कि कविता के बीज बचपन में ही अंकुरित हुए थे।

"आओ हम सब झूला झूलें,
पेंग बढ़ाकर नभ को छू लें।"[12]

तीसरी कक्षा से ही कविता मैत्रेयी को एक दिशा देने का काम करती रही। तब से मैत्रेयी की कविता का जन्म हुआ। युवावस्था तक आते-आते व फलती-फूलती गई। बचपन में ही शिक्षा का अगला पड़ाव दो साल तक गुरुकुल में बिताना पड़ा। वहां साहित्य में अधिक रूचि पैदा हुई। डॉ. विजय दीक्षित के साथ हुई बातचीत में मैत्रेयी कहती हैं:- "कविता पढ़ना, तीसरी कक्षा से ही अच्छा लगने लगा। मैं चिट्ठियां ऐसी लिखती थी कि उधार न पटाने वाले लोग भी मां को घर बैठे ही खेती के लगान के पैसे दे जाते थे। मुझे प्रेरणा से पहले अपनी कलम के प्रभाव ने आगे बढ़ाया।"[13] मैत्रेयी पुष्पा एक ऐसी स्त्री है जिसको समाज ने नहीं, उन्होंने अपने आप को बनाया है। साहित्य के क्षेत्र में कहानी, उपन्यास के माध्यम से अपनी अलग पहचान बनाई। शादी के उपरांत पति से विवाद होना,

आरोप-प्रत्यारोप में मैत्रेयी जी पूरी तरह से हताश होती हैं। उससे उबरने के लिए नया कुछ करने हेतु लिखने के लिए कृत संकल्प लेती हैं।14वर्ष की उम्र में ही मैत्रेयी ने अपने सहपाठी लड़के की कविता से प्रेरित होकर लिखना शुरू किया था। उन्होंने सोचा कि यह लड़का लिख सकता है तो मैं क्यों नहीं लिख सकती? विचार करें तो मैत्रेयी पुष्पा के लेखन कार्य की नींव उनकी मां कस्तूरी के विचारों से प्रेरित प्रतीत होती है। कस्तूरी प्रगतिशील विचारधारा की स्त्री थी। उसने पुरुष जाति के विरुद्ध आवाज़ उठाई। नारी जाति को स्वावलंबी बनाने की बात कहती हैं। मैत्रेयी ने अपनी मां के विचारों से प्रभावित होकर नारी का शोषण, संघर्ष से मुक्त करने तथा उसे न्याय देने के लिए स्त्री-विमर्श साहित्य लिखना प्रारंभ किया। मैत्रेयी अपनी बेटियों को प्रेरणा स्रोत मानती है। बड़ी बेटी नम्रता के कहने पर मैत्रेयी ने पहली कहानी लिखी। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में छपी कहानी मैत्रेयी को लेखिका बनाने में सहायक सिद्ध हुई। 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में कहानी लिखकर अपना लेखन कार्य शुरू किया। विविध कहानियों को पढ़कर मन में नई कहानी की कुछ ललक होने लगी।

वस्तुतः विचार करें तो नब्बे के दशक की श्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में जगत विख्यात होने के पीछे बचपन से लेकर कई घटनाएं उल्लेखनीय हैं। जैसे जीवन के कटु प्रसंग हो, चाहे वह गुरुकुल की व्यवस्था हो, किसी लड़के की प्रेरणा हो, मां का प्रभाव हो या अपनी बेटी के कहने पर। किसी भी साहित्यकार में लेखन का गुण उपजाऊ होता है तथा साहित्य सृजन अंतप्रेरणा से उद्भूत होता है। तीव्र संवेदनशीलता अभिव्यक्त होकर व्यक्ति को सृजनशील बना देती है। कोई अभाव मन में पलता है जो मन में चुभता है और कल्पना में प्रबल हो जाता है। वही आवेश, वहीं चुभन माननीय विचारधारा को रचनात्मक प्रक्रिया में बदल देती है। परिवेश का प्रभाव मन पर पड़ता है और भावों, विचारों की तीव्रता लेखन के लिए प्रेरणा बन जाती है। मैत्रेयी आरंभ से ही साहित्यकारों के संपर्क में आई। जिन्होंने लेखिका को अप्रत्यक्ष रूप से लेखन का कार्य करने के लिए प्रवृत्त किया। उनमें आंचलिकता की झलक दिखाई देती है। इसके साथ पुष्पा पर फणीश्वरनाथ रेणु का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। मैत्रेयी पुष्पा फणीश्वरनाथ रेणु तथा राजेंद्र यादव को गुरु मानती हैं।

**अपने लेखन के बारे में उनके अपने विचार**

साहित्य में मनुष्य खुद को प्रकट करता है। साहित्य सुंदर होता है। साहित्य में सुंदरता कम, सच्चाई ज्यादा होती है। सच कड़वा होता है। सभी को सच स्वीकार करने में डर महसूस होता है। मैत्रेयी पुष्पा बचपन से ही असाधारण लड़की थी। उनकी असामान्यता उनके लेखन में दिखाई देती है। 'विज्ञान भूषण' से हुई मुलाकात में मैत्रेयी कहती हैं:- ''मैंने हर तरह के खतरे को झेलते हुए लिखा है। विवाहिता हुए भी तनी डोरी पर चलते हुए कलम चलाई है।"[14] हर क्षेत्र के साथ साहित्य के क्षेत्र में भी स्त्रियों पर हो रहे शोषण को अपने साहित्य के माध्यम से उजागर करती हैं। मैत्रेयी जी साहित्य के माध्यम से स्त्रियों की व्यथा, उनके मन में दबी-कुचली भावना को उजागर करती हैं। अपने साहित्य में यथार्थ का सजीव चित्रण किया है। वह सच्चाई से स्त्री को अवगत कराती हैं। उन्होंने अपने साहित्य का निर्माण परिवारों को उजाड़ने के उद्देश्य से नहीं किया बल्कि अपने साहित्य से पर्दे के पीछे छिपी सच्चाई को प्रकाश में लाती हैं। अपने साहित्य के द्वारा पुरुषों की सोच में परिवर्तन करने की आशा करती हैं। स्त्री को समानाधिकार देना चाहती हैं। मैत्रेयी पुष्पा सोचा करती हैं:- "न्याय नहीं कर पाऊंगी तो क्यों लिखती हूं? मैं लिखने के लिए नहीं, शायद जीने के लिए लिखने लगी हूं। तब फिर जो लिखूंगी सच ही लिखूंगी, बेशक जिसे देखकर खुद ही दंग रह जाऊं और सजा भी मिले। सजा इसीलिए मिलेगी क्योंकि औरतों की ऐसी छवि बनेगी कि पुरुषों की इज़्ज़त को खतरे...परिवारों के खंबे हिल उठेंगे।"[15] मैत्रेयी सच कहने से किसी से डरती नहीं। अपने लेखन से वह उथल-पुथल मचा देती हैं। मैत्रेयी ने अपने लेखन में गांव की मामूली, मगर ज़बरदस्त स्त्रियों का चित्रण किया है।

**साहित्यकार के रूप में**

मैत्रेयी पुष्पा ने साहित्य में कविता से लेखन का कार्य प्रारंभ किया और वह कहानी से होकर सफल उपन्यासकार तक पहुंची। उनके अपने कहानी, लेख, उपन्यास के पात्र वास्तविक जीवन से लिए हैं। किसी भी साहित्यकार पर स्थानीय परिवेश का प्रभाव रहता है। मैत्रेयी खुद बुंदेलखंड क्षेत्र में जन्मी और पली-बढ़ी साहित्यकार हैं। इसी वजह से जन्मजात रूप से उनमें सांस्कृतिक तथा भाषिक विविधता दिखाई देती है। उन्होंने अपने लेखन में ग्रामीण भारत को

बखूबी चित्रित किया है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में हो रहे शोषण को उन्होंने संघर्ष रूप में अपने साहित्य में समय-समय पर उजागर किया है। महिला अस्तित्व को एक नई पहचान दी है। स्त्रियों के प्रति अन्याय की भावनाओं को जड़ से उखाड़ने का प्रयास किया है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की विशेषता यह है कि उनके उपन्यासों में गांव प्रमुख न होकर, वहां की स्त्रियां प्रमुख हो जाती हैं। गांव में रहने वाली स्त्री, स्त्रियों के प्रति गांव वालों का नज़रिया, स्त्रियों के लिए बनाए गांव वालों के नियम, कानून और इन सब का विरोध करके इनसे टकराकर संघर्ष करते बाहर निकलती उपन्यास की नायिका। ऐसी नायिका ही मैत्रेयी पुष्पा की उपलब्धि है। जहां भी स्त्रियों को हीनता की दृष्टि से देखा जाता है चाहे वह पत्नी हो, रखैल हो, जिस समाज ने अपने हाथों की कठपुतली बनाने का काम किया हो, ऐसी व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास मैत्रेयी पुष्पा ने अपने साहित्य में किया है। वह स्त्री के लिए कोई सीमा, कोई बंधन नहीं मानती। यदि पुरुष स्वतंत्र है तो स्त्री क्यों नहीं? यदि पुरुष अपने निर्णय स्वयं लेता है तो स्त्री अपने बारे में निर्णय स्वयं क्यों न ले? इन सबके ऊत्तर मैत्रेयी अपनी नायिका से दिलवाती है। उनकी नायिका की अपनी कुछ विशेषताएं, अलग पहचान होती है। मैत्रेयी पुष्पा साहित्य लेखन में किसी भी दबाव या मज़बूरी को अस्वीकार करती हैं। इन्हें 'एक बोल्ड महिला साहित्यकार' कहा जाता है। ग्रामीण परिवेश का ऐसा प्रभावकारी लेखन हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के बाद अन्य किसी भी लेखक-लेखिका ने नहीं किया है। राजेंद्र यादव ने लिखा है:- "आज मैत्रेयी पुष्पा हिंदी का एक ऐसा व्यक्तित्व है जिससे घृणा की जाए या प्रेम, किंतु उसकी उपेक्षा कोई नहीं कर पाता। वह हिंदी की बेहद पठनीय, मगर महत्वपूर्ण लेखिका हैं।"[16] उन्होंने जो कुछ लिखा अपने अनुभव से लिखा। अनुभव से विचार बने, इसीलिए वह पहचाने गए। उन्हें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उसे साहित्य के माध्यम से पाठकों के सामने रखा। डॉ. सी.जे.प्रसन्नकुमारी के मतानुसार, "नारी शोषण के नंगे चित्र मैत्रेयी पुष्पा जैसी महिला कथाकार की तूलिका ही खींच सकती है।"[17] मैत्रेयी जीवन संघर्षों के माध्यम से स्त्रियों को जागृत करते हुए कहती है स्त्री शक्ति, स्त्री के भीतर ही छिपी हुई है जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में।

## 1.2 मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य संसार

**1.2.1 उपन्यास साहित्य:-** बेतवा बहती रही, इदन्नमम, झूलानट, अल्माकबूतरी, विज़न, अगनपाखी, कही ईसुरी फाग, त्रियाहठ, गुनाह बेगुनाह, फ़रिश्ते निकले आदि।

**1.2.2 कहानी संग्रह:-** चिन्हार, ललमनियां, गोमा हंसती है, पियरी का सपना।

**1.2.3 नाटक:-** मंदाक्रांता।

**1.2.4 निबंध संग्रह:-** खुली खिड़किया, सुनो मालिक सुनो, चर्चा हमारा।

**1.2.5 आत्मकथा:-** कस्तूरी कुंडल बसे, गुड़िया भीतर गुड़िया।

**1.2.6 संस्मरण:-** फाइटर की डायरी।

### 1.2.1 मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य का परिचय

**बेतवा बहती रही (1993)** मैत्रेयी पुष्पा का यह उपन्यास एक आंचलिक उपन्यास है। यहां पर नारी ने विंध्य की शोषित नारी की दुरावस्था का चित्रण किया है। यहां पर उर्वशी नाम की स्त्री को प्रस्तुत कर अनेक ऐसी बातों को उजागर किया है, जिससे ज्ञात होता है कि गांव की स्त्रियां आज भी कितनी पीड़ित हैं। यह एक नहीं, अनेक उर्वशियों, अनेक मीराओं, अनेक विधवाओं की कहानी है। बेतवा के किनारे जंगल की तरह अनेक बस्तियां बस चुकी हैं। उन्हें जीवन की विषमता, अभाव और मज़बूरियों ने बुरी तरह जकड़ रखा है। भाग्य पर भरोसा रखने वाले दीन-हीन किसान जिन्हें अपने भविष्य की नहीं, आज की चिंता है। इसी के साथ अनेक प्रश्नों से, प्रश्न चिन्हों से, समस्याओं से घिरा हुआ यह अनोखा समाज है। यहां अनंत काल से चली आ रही रूढ़ियां हैं जो आदमी को आगे बढ़ने नहीं देती। औरत को सिर्फ भोग की वस्तु समझ कर उसका उपभोग हो रहा है। यहां शिक्षा का गहरा अंधेरा है जो सबको निगल कर ही दम लेगा। सदियों से चली आ रही और मानवीय यंत्रणांए जो गरीबों को दबोचती हैं। ऐसी स्थितियों में पली-बढ़ी दो सहेलियां मीरा, उर्वशी। उनके बीच बनते बिगड़ते नए रिश्ते इसी के माध्यम से स्त्री की विवशतापूर्ण ज़िन्दगी को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। गरीब होने के कारण अपने मन की आशाओं को कुचलकर, उर्वशी भाई के कहने से सहेली के पिता से शादी कर लेती है। उसे मन के विरुद्ध ज़िन्दगी बितानी पड़ती है। फिर भी कभी अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटती। अंत तक सबके बारे में भला ही

सोचती रहती है। साधारण में भी असाधारण। इसीलिए सब तरह से अभिशप्त हो रही चुपचाप भावनाओं से प्रेम वासना, हिंसा, घृणा से भरी एक हृदयद्रावक अछूती कहानी है। यह सिर्फ अकेली उस उर्वशी की व्यथा की कहानी नहीं है बल्कि पूरे अंचल के व्यथा की कथा है।

**इदन्नमम (1994)** इदन्नमम उपन्यास में पिछड़े अंचल के जीवन यथार्थ को उद्घाटित करने के साथ-साथ नारी की नियति को केंद्र में रखा गया है। यह सहने, झेलने और जूझने के लिए अभिशप्त नारी की व्यथा ही कथा का औपन्यासिक रचाव है। इस उपन्यास की केंद्रीय चरित्र 'मंदा' है। मंदा अपनी दादी के लिए बावरी और सिरिन है। शोषकों का प्रतिनिधित्व करने वाला अभिलाख मंदा को काल भैरवी कहता है। सरकारी तंत्र के लोग महाकाली का संबोधन देते हैं। महाराज उसे रानी लक्ष्मीबाई की तरह हौसले वाली मानते हैं। मंदा की इन विशेषताओं के कारण मंदा को औपन्यासिक महत्व समझ में आता है। साथ ही यह भी लगता है कि मंदा की केंद्रीय उपस्थिति के बावजूद यह उपन्यास विसंगतियों और गंभीर सरोकार से संबंध रखता है। कुसुमा भाभी अपनी दुर्गति के लिए गरीबी को ज़िम्मेदार ठहराती है। गरीबों को सपने देखने का कोई हक नहीं। मन्दा का परिवार अनेक संकटों के षड्यंत्र का शिकार होकर विपन्न हो जाता है। तीन पीढ़ियों की नारियां अपने-अपने ढंग से पुरुष प्रधान व्यवस्था के अवमूल्यों को झेलती हैं। बऊ (मंदा की दादी) अपने बेटे की हत्या के बाद भूमिखोरो और लुटेरे रिश्तेदारों से बचने के लिए पराए गांव की शरण में जाने को विवश हो जाती है। दादा पंचम सिंह के रूप में उन्हें सच्चा शुभचिंतक मिलता है लेकिन पंचमसिंह के भाई ककाजू सहायता और सहानुभूति की आड़ में मंदा के पिता की सारी संपत्ति हड़प लेते हैं। लोगों की कूटनीतियों, मकरंद से साहचर्या जनित लगाव और कैलाश मास्टर के बुरे व्यवहार के बीच युवा होती मंदा शीघ्र ही समझ लेती है कि अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। मंदा की मां (प्रेम) समाज की दृष्टि से कुलटा है लेकिन यह भी अपनी लड़ाई खुद लड़ती है और स्वार्थियों के चंगुल से अतंत मुक्त हो जाती है। अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हुए मंदा को गांव की बदहाली, गरीबी, सामंती और पूंजीवादी हित्तों की निरंकुशता, आदिवासियों की सहायता का प्रत्यक्ष परिचय मिलता है। मंदा और कोयले वाले महाराज इन असहायों और वंचितों को संगठित करते हैं। हिम्मत प्रदान करते हैं

और अपनी मेहनत पर भरोसा करने की प्रेरणा देते हैं। ज़मीन की खरीदारी की मार से सत्रंस्त सोनपुरा, डिकोली आदि गांव के ठेकेदार वंचित शोषण चक्र की जटिलता और भयावहता के साथ-साथ अपनी शक्ति और सामूहिक संघर्ष की शक्ति समझ लेते हैं तो वह सही और सकारात्मक सोच में संपन्न हो जाते हैं। वहीं पर मंदा की मां आर्थिक सहायता से जन संघर्ष को मज़बूती प्रदान करती है। दूसरी और अभिलाख जैसे भेड़िए को सुगना ने मार कर मुक्ति का एक दरवाजा हिंसा के आंगन में खुलवाया है। अपने समाजबोधी और क्रांतिधर्मी कथ्य को बयान करने में मैत्रेयी पुष्पा ने असाधारण भाषा अधिकार का परिचय दिया है। जनधर्मी कथ्य और सहज संप्रेषणीय शिल्प के फलस्वरूप 'इदन्नमम' पठनीय और प्रासंगिक कृति बन गई है।

**चाक (1997)** अन्य उपन्यासों की तरह इस उपन्यास का परिवेश भी ग्रामीण है। उपन्यास की अंतर्वस्तु या घटनाएं निम्न मध्यवर्गीय किसान के जीवन में हस्तक्षेप करके संस्कारों के रूप में जन्में पुराने और नए के द्वंद्व से सामाजिक संरचनागत परिवर्तनों का लेखा-जोखा है। उपन्यास की शुरुआत गर्भिणी विधवा रेशम की हत्या से होती है। सांकेतिक रूप में यह समाज द्वारा अस्वीकृत नए की संभावना और ज़मीन को नष्ट किए जाने का षड्यंत्र है। यह षड्यंत्र अंतरपुर गांव में न पहला है न अंतिम। अंतरपुर के कुरुक्षेत्र में औरत पुरुष से लड़ रही है। विधवा महावर, चूड़ी, बिंदी और आंसू दोनों अस्त्रों से लड़ाई के नियम पुरुष प्रणीत हैं। सारंग नैनी इन सबसे हिसाब मांगती है। हस्तक्षेप की सीढ़ी चढ़ते उससे भी आगे निर्णायक की हैसियत पाने तक पहुंचती है। सारंग पति के साथ तमाम सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी है जो औरतों को बांधती है। सारंग व्यवस्था के तालों की चाबी को अपने हाथों में पाने की कोशिश करती है। सारंग नाम की सार्थकता और व्यक्तित्व के आयाम को दर्शाती है। सारंग गुरुकुल में पढ़ी-लिखी, गांव की सबसे शिक्षित महिला है। वह घर से लेकर बाहर तक के काम में साझेदारी निभाने वाली है। रंजीत भी पढ़ा लिखा है पर वह ढंग की नौकरी न पा सका। इसीलिए अंतर्मन से कुंठित है। किसी भी तरह अधिकार पाकर स्वयं को संतुष्ट और अपने होने को सिद्ध करता है। डोरिया को जेल भिजवा कर उसे गांव में अपनी हैसियत बढ़ानी है लेकिन गवाह और साक्ष्य के अभाव में डोरियां छूट भी जाता है। डोरियां के भय से रंजीत को अपने बेटे चंदन को बड़े भाई के पास

शहर भेजना पड़ता है। इस तरह के भय गांव में कदम-कदम पर हैं। किसान को सरकारी चपरासी अधिक सुरक्षित एवं आदर का पात्र लगता है। तभी तो वह ज़मीन बेचकर, रिश्वत के ज़रिय नौकरी में लगना अधिक लाभप्रद मानता है। सारंग गांव की औरतों की तरह खेत-खलिहान, गोबर पानी का काम करती है। रंजीत के लिए करवाचौथ का व्रत रखती है। अंतरपुर गांव में थानसिंह हेडमास्टर शिक्षक कम, राजनीतिबाज अधिक है। व्यक्तिगत रंजिश, चुनाव पद पाने के लिए उस पर जमे रहने के हर तरह के तरीकों को जनहित का नाम देने की बेशर्मी, सारंग का श्रीधर मास्टर के प्रति आकर्षण, घायल श्रीधर का देह समर्पण, कलह, लांछन अविश्वास यंत्रणा सराहते हुए सारगं का चुनाव में कूद जाना और नारी जाति के लिए संघर्ष एवं संकल्प करना यह उपन्यास की कथावस्तु है। सारंग पुरुष के रूप में रंजीत से असंतुष्ट नहीं है पर पति का साथ निभाने पर भी खिन्न रहती है और मानसिक आवश्यकता की चाह में श्रीधर प्रजापति की ओर खींचती चली जाती है। यहां तक कि अपनी देह को भी सौंप देती है। पाठक के संस्कारों को झटका लगता है।

**झूलानट (1999)** यह उपन्यास शीलो नामक नारी पर आधारित है जो न तो सौंदर्य से संपन्न है और न ही पढ़ी-लिखी है। बाहरी सौंदर्य को महत्व देने वाला उसका पति सुमेर, पिता को दिए वचन को निभाने के लिए शीलो से विवाह करता है पर उसे अपनाता नहीं। शीलो समाज की ही नज़रों में सुमेर की पत्नी है। सुमेर को सुंदर पत्नी चाहिए थी। पत्नी के रूप को लेकर वह अपनी मां से कहता है कि काले-गोरे दो रंग होते हैं पर तुम्हारी बहू तो बैंगनी है। सुमेर पत्नी को छोड़कर शहर चला गया, वहीं का होकर रह गया। पति द्वारा किए गए अपमान और तिरस्कार के कारण शीलो अपना जीवन समाप्त करने की बात नहीं सोचती। शीलो में जीने की उत्कट लालसा है। जिजीविषा परिस्थितियों से जूझने की शक्ति है। वह व्रत रखती है, यहां तक कि वह अपनी छठी उंगली जो उसके दुर्भाग्य का कारण मानी जा रही थी, उसे काट देती है लेकिन पति नहीं आया। सुमेर गांव में एक-दो बार आया भी किंतु अपने हिस्से की ज़मीन के बंटवारे के लिए। शीलो को ले जाने के लिए नहीं। पति द्वारा स्वीकार न किए जाने पर भी वह उस घर को छोड़ती नहीं। ममतामयी सास भी उसके दुख से दुखी रहती है। जब उसे विश्वास हो जाता है कि उसका बेटा सुमेर उसे अपनाएगा नहीं तो वह

अपने छोटे बेटे बालकिशन को, शीलो को अपनाने के लिए कहती है। बिना किसी प्रतिकार के बालकिशन, शीलो को अपना लेता है। शीलो भी उसे पति के रूप में स्वीकार कर लेती है। बालकिशन का साथ पाकर शीलो में आत्मविश्वास आ जाता है। वह घर परिवार, अपने अधिकार क्षेत्र को लेकर अपनी सास और पति बालकिशन को अपने इशारे पर नचाना चाहती है। यहां शीलो का दूसरा रूप हमारे सामने आ जाता है। वह शीलो जो सास को अम्मा कहती थी, पूजती थी, अब घर की मालकिन बन गई। इस प्रकार के शुष्क और कठोर व्यवहार को देखकर बालकिशन घर छोड़कर चला जाता है। साधु के साथ रहने लगता है। बालकिशन साधु संतों की संगति में रहकर भी सांसारिक मोह माया छोड़ नहीं पाता। वह शीलो के मोह में इस कदर फंसा है कि उसे मंदिर की देवी की मूर्ति में शीलो नज़र आती है। उसे पकड़ने लगता है तो उसके अमर्यादित व्यवहार को देखकर बाकी लोग उसकी खूब पिटाई करते हैं। कथा में गतिमयता है। कहीं भी अवरोध उत्पन्न नहीं होता। बलकिशन के मुख से रामायण के छोटे-छोटे प्रसंग और लोक कथाएं उपन्यास के प्राण तत्व बन पड़े हैं। शीलो के दुख की तुलना कभी सीता मैया से तो, कभी पूतना के रूप से की गई है। पात्रों के रूप में शीलो का व्यक्तित्व सशक्त रूप में सामने आया है। शीलो अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। वह पुरुष सत्ता, समाज द्वारा स्थापित मान्यताओं को खुली चुनौती देती है। पति के छोड़ जाने पर वह बिना किसी आपत्ति के देवर को पति मान लेती है। वह रूढ संस्कारों से ग्रसित नहीं है। उसकी मान्यता है कि जब पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती? मैत्रेयी पुष्पा ने शीलो के रूप में नारी के अलग रूप को प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज में नारी के जिस पारंपरिक रूप की अवधारणा बनी हुई हैं, उससे नितांत भिन्न है। शीलो घर की इज़्ज़त को ताक पर रखने वाली औरत है। शीलो का व्यक्तित्व विद्रोही है। विषय की दृष्टि से यह उपन्यास नया नहीं है, परंतु प्रस्तुति का ढंग निश्चित नया है। ग्रामीण परिवेश में नारी के नए रूप को उभारा है और नारी की शक्ति को दर्शाया है। लेखिका ने दिखाया है कि नारी में जितनी दया, ममता, करुणा और सहनशीलता है। वह उतनी ही कठोर और विद्रोही भी बन सकती है। वास्तव में लेखिका ने शीलो के माध्यम से नारी की बदलती हुई मानसिकता को दिखाया है।

**अल्माकबूतरी (2000)** मैत्रेयी पुष्पा के पिछले उपन्यासों की तरह इस नए उपन्यास की कथा का केंद्र बुंदेलखंड का गांव ही है। बस प्रसंग बदला हुआ है। यह कथाभूमि अब तक प्रकाशित उनके उपन्यासों से भिन्न नहीं है बल्कि इस उपन्यास के कथा विकास के केंद्र में अंग्रेजो के द्वारा घोषित एक अपराधी जनजाति की मार्मिक कथा है जो स्वतंत्र भारत के माथे पर अरसे से लगी एक कलंक कथा भी है। अभिशप्त कबूतरा-कबूतरी जनजाति की व्यथा और कथा है जो अपने संघर्ष से कलंक से मुक्ति की आकांक्षा रखती है और सामान्य भारतीय जनजाति की मनुष्य धारा में आने के लिए बेचैन ही नहीं, सतत् प्रयत्नशील भी है। अपने इस उपन्यास में उन्होंने अपराधी जनजाति कबूतरा-कबूतरी को न केवल जाति मिथक इतिहास एवं किंवदंतियों के संदर्भ में उठाया है बल्कि इसे प्रताड़ित, पीड़ित एवं शोषित जनजाति को समय के दंश एवं लेखकीय सहानुभूति और संवेदना के साथ भी उठाया है। इस उपन्यास का कथ्य बेशक छोटा है लेकिन परिपेक्ष्य, आयाम एवं संदर्भ बहुत बड़ा है। मंसाराम कज्जा है और कदमबाई कबूतरी। मंसाराम सभ्य समाज का प्रतीक है और कदमबाई अपराधी जनजाति की। इन दोनों में प्रेम हो गया, जिससे संघर्ष, अंतर्द्वंद एवं जाति के बीच संशय पैदा हो जाता है। कदमबाई जानती है कि उसके पति की हत्या मंशाराम ने ही की है फिर भी वह मंशाराम के बच्चे को जन्म देना चाहती है। वह अपने पुत्र राणा को लेकर संशय में है। दूसरी तरफ मंसाराम उसे स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। मंसाराम के घर में इस संबंध को लेकर भयंकर विवाद है लेकिन कबूतरी कदमबाई की हार्दिक इच्छा है कि राणा को अपराधी जाति की छाया से दूर रखा जाए। भूरी का बेटा रामसिहं भी कज्जा से ही पैदा हुआ था। शिक्षक की नौकरी करते उसने कज्जा बनने की कोशिश की थी लेकिन नियति का फैसला उसे पुलिस के करीब ही नहीं ले गया, उसे अपराधी डाकू से जोड़ दिया। कबूतरा समाज की कदमबाई ने अपने बेटे राणा को रामसिंह के सुपुर्द कर दिया था। इस विश्वास के साथ कि वह अपराध कर्म से मुक्त होकर कब्जे में लिया जाएगा। राणा रामसिहं काका के साथ जाता और पढ़ता लिखता। राणा, रामसिंह की बेटी अल्मा के प्रेमपाश में ही बिधं जाता है। तब कहानी नया मोड़ लेती है। मंसाराम का दोस्त केहरसिंह शराब का नया ठेका खुलवाता है। इस नई दुनिया में पुलिस तंत्र से कबूतरा जाति के मुक्ति का प्रयास

है। इसी बीच रामसिंह काका की हत्या और अल्मा का अपहरण होता है। राणा, अल्मा के प्रेम में पागल हो जाता है। अल्मा पहले एक नेता के पास रखी जाती है लेकिन वह भागने के चक्कर में एक मंत्री के निवास स्थान पर पहुंच जाती है। अंततः वह यहां से भी भगा दी जाती है। बाद में कबूतरा गांव में पहुंचती है लेकिन समय ने उसे बदल दिया है, वह विद्रोही बन गई है। अंततः वह अपने को समर्पित कर देती है और नेता की गोली से मृत्यु हो जाती है। उपन्यास की कथा संरचना ही नहीं, स्थापत्य भी सुगठित है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में एक लांच्छित, दलित और अपराधी जनजाति के संघर्ष को अल्मा के माध्यम से प्रेम एवं संघर्ष के बीच जिस सुखद परिणति तक पहुंचाया है, वह न सिर्फ अह्लादायक है बल्कि मनुष्यता को बनाए रखने की आस्था का परिचायक भी है। पुष्पा ने उपन्यास साहित्य में अपराधी समझी जाने वाली कबूतरी जनजाति पर 'अल्माकबूतरी' उपन्यास लिखकर उनके प्रति होने वाले अन्याय को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। इस उपन्यास को इंडिया टुडे के सर्वेक्षण ने बीस सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में स्थान दिया है। सभ्य समाज ने पिछली जातियों को हमेशा हाशिए पर रखा है। घर बसाने के लिए जगह नहीं दी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कबूतरा लोग गांव से बाहर खेतों में बसने लगे। पुरुष चोरियां करने लगे और महिलाएं शराब तैयार कर बेचने लगी।

**अगनपाखी (2001)** इस उपन्यास में भुवनमोहिनी की कथा नई नहीं है बल्कि अनेक उपन्यासों फिल्मों, लोककथाओं के रूप में बदलकर आती रही है। संपत्ति के लिए भाइयों में झगड़े होते हैं और विधवाओं की हत्या अनुष्ठान भारतीय सामंती परिवारों में हज़ारों बार दोहराए जाते रहे हैं। ऐसे ही एक सामंती परिवार के पगले लड़के का भुवन से विवाह कर दिया जाता है। फिर वही सामंती दांवपेच मैत्रेयी पुष्पा ने अपने पूर्व परिचित दिलचस्प किस्सागोई के साथ इस कथा को एक नया कोण दिया है। जिसके पीछे वृंदावन लाल वर्मा के उपन्यास 'विराट की पद्मिनी' की अनुगूंज है। इस तरह संस्कार बिंबो को जगाती हुई कहानी नई पुरानी दोनों एक साथ हैं। लोकगीतों से गुथी अगनपाखी की भाषा नई होती है। अपनी आग में जलकर जीवित हो उठने वाले पक्षी की तरह औपन्यासिक यात्रा में ज़बरदस्त मोड है। भुवनमोहिनी से उसकी बहन का बेटा प्यार करता है जो कि भारतीय संस्कारों के बिल्कुल विपरीत है। भुवनमोहिनी के साथ जो कुछ हुआ

उसके लिए दोषी चंदर स्वयं को मानता है। चंदर और भुवन के संबंध के साथ कथानक सामने आता है। यह जानकर नानी थर्रा उठती है। आत्महत्या करना चाहती है। चन्दर भाग जाता है। भुवन आत्मसमर्पण कर देती है। जिसका परिणाम भुवन की जिंदगी को नर्क बना देता है। उसकी शादी पागल व्यक्ति से कर दी जाती है। चंदर के पिता इस शादी के लिए कुंवर अजय सिंह से सौदा करते हैं कि चन्दर को नौकरी पर लगाएं। इसके बदले शादी अजय सिंह के भाई विजय सिंह से करवा देंगे। चंदर की नौकरी की एवज भुवन का बलिदान होता है। चन्दर को जब यह बात पता चलती है तो वह ग्लानि, कुंठा और व्यथा से भर उठता है लेकिन नौकरी से इस्तीफा देने का साहस नहीं जुटाता। संकट में फंसी भुवन का साथ देने का साहस भी उसमें नहीं है। इसके बावजूद भी वह उससे प्यार करता है। भुवन के पत्र द्वारा ललकारने पर वह अंदर से हिल जाता है और भुवन की मदद करने का सहज जुटाता है। भुवन और चंदर का प्रेम समाज की दृष्टि से अनैतिक है। अपनी मौसी से प्रेम करना समाज की नज़रों में महापाप है। चंदर के खातिर उसके पिता ने भुवन को पागल के हवाले सौंप दिया। भुवन के सारे सपने, सारा ऐश्वर्या पल भर में मिट गया। उसे कसने, बांधने और बेड़ियां लगाने के प्रयत्न किए जाने लगे, जब उसने विरोध जताया तो उसे मारने की कोशिश की गई लेकिन भुवन किसी के आगे झुकी नहीं। मौका मिलते ही उसने कोर्ट में अर्जी दी जिससे कुंवर सिहं अपने मकसद में कामयाब नहीं हो सके। स्त्री जागृत हुई और पग-पग पर वह संघर्ष कर रही है। पुरुष समाज उसे अपने नागपाश में जकड़ने का प्रयास करता है। कभी भय से, कभी धमकी से, तो कभी उसकी भावना के साथ खिलवाड़ करके। वह सब कुछ सहती है लेकिन कोने में धकेले जाने पर पलट कर वार करना भी जानती है। नारी की शक्ति, साहस और तेज के समक्ष पुरुष टिक नहीं सकता।

**विज़न (2002)** बीसवीं सदी के अंतिम दशक के दौरान हिंदी कथा जगत में मैत्रेयी पुष्पा का आगमन एक घटना की तरह हुआ। मध्यवर्गीय शहरी ड्राइंग रूम तक सीमित स्त्री लेखन से हटकर, मैत्रेयी पुष्पा ने गांव की कहानियां लिख कर सबको चौंका दिया। जैसा कि हर नई असुविधाजनक प्रवृत्ति के साथ आरोपों और मज़ाक उड़ाने की अनिवार्यताओं से गुज़रना पड़ा। उन्हें ग्रामीण जीवन की नहीं, 'गवार' कथाकार की प्रतिष्ठा दी गई। मैत्रेयी पुष्पा एक के बाद एक उपन्यास

लिखती चली गई। कहानियां हो या उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने गांव का दामन नहीं छोड़ा। 'विज़न' में मैत्रेयी पुष्पा के जीवन की ऐसी घटना है जो एक साथ चौंकाती तथा झटका देती है। क्या यही वह मैत्रेयी पुष्पा है? कहां खेत-खलिहान, बैलगाड़ी और रेतभरे दगरे और कहां महानगर के पाश, अस्पतालों के चमकते कॉरिडोर, जींस और एप्रिन पहने, स्टैथोस्कोप लगाए डॉक्टर-डॉक्टरनिया, मोबाइल फोन और ए.सी गाड़ियां। इस बार 'विज़न' में मैत्रेयी ने अपने तीस-बतीस साल दिल्ली में गुज़ारी शहरी जिंदगी को ही नहीं लिया बल्कि नेत्र चिकित्सा के एक विशेष क्षेत्र को चुना है। शायद इसी तरह के प्रोफेशन उपन्यास हमारे यहां एक-दो से ज्यादा नहीं है। विज्ञान तकनीक और मानवीय भावना की रोज़मर्रा द्वंदात्मकता के बीच 'विज़न' सिर्फ दृष्टि की ही नहीं, दृष्टिकोण की भी तलाश है। 'विज़न' स्त्री शक्ति के नए आयाम खोजने और खोलने का एक साहसिक प्रयोग है। तो आइए चलिए चलते हैं रोशनी के लिए भटकती आंखों के नवीनतम ऑपरेशन थिएटर में जिसका नाम है 'विजन'।

**कही ईसुरी फाग (2004)** यह उपन्यास लोकगायक ईसुरी और रजऊ की प्रेम कहानी है। जिसमें लेखिका ने ईसुरी की फागों का वर्णन किया है। ईसुरी ग्रामकवि है। यह विवाहित राज्जो से प्रेम करने का दुस्साहस करता है। स्त्री पुरुष संबंधों की नैतिकता को चुनौती देते हैं। रज्जो का विवाह माधोपुरा के प्रताप से हुआ है जो छतरपुर में पढता है। रज्जो, ईसुरी की फागों के दीवाने होकर उनसे प्रेम करती है। प्रताप के आने पर, प्रताप का चचेरा भाई रामदास, प्रताप को ईसुरी के खिलाफ भड़काता है। प्रताप, रज्जो को छोड़कर चला जाता है। रामदास अपनी चाल में कामयाब होता है। उसकी नज़र रज्जो और प्रताप की खेती पर है। इसी कारण रामदास ने ही प्रताप को भगाकर अंग्रेजों के हवाले कर दिया है। अब उस पर लगान देने की लाचारी नहीं। ईसुरी भी माधोपुरा छोड़ जाता है। दोनों के छोड़ जाने से रज्जो की दुनिया उजड़ गई। गांव वाले उसका जीना दूभर कर देते हैं। रज्जो फागें गाकर ईसुरी को याद करती है। अब फागें ही उसका जीवन सहारा बनी हुई है। वह ईसुरी के प्यार में जोगिन बनती है। रामदास, रजऊ से बछिया करना चाहता है। रजऊ मर्दवादी सोच के खिलाफ जूझती है। सदियों से चली आ रही सामाजिक कुरीतियों का विरोध करती है। वह रामदास से बछिया करके अपने आप को मिटाना नहीं चाहती बल्कि ईसुरी की प्रेमिका रहकर ही फागों के रूप

में अमर बनना चाहती है। वह फगवारे के सिवाय किसी दूसरे के बारे में सोच भी नहीं सकती। उसके प्रेम को ही जीवित रखना चाहती है। रज्जो द्वारा बछिया के लिए इंकार करने से रामदास उसे मारने की धमकी देता है। उस पर हमला भी करता है पर रज्जो डरती नहीं है। गांव वाले, सास, भाई, रामदास आदि के विचारों के आगे झुकती नहीं बल्कि विरोध करने का साहस करती है। अपने निर्णय पर अटल रहती है। रामदास पान में धतूरे का बीज डालकर, कुएं में धकेल कर उसकी जान लेने की कोशिश करता है। रज्जो गंगिया से मिलकर ईसुरी से मिलने के लिए घर से भागने का साहस करती है। रज्जो और गंगिया आज़ादी के ऐसे सिपाही हैं जिनके पास फागों के अस्त्र हैं। वह देश के प्यार के खातिर रानी लक्ष्मीबाई बनकर दुश्मनों का मुकाबला करती हैं और देश के लिए शहीद होती हैं। लेखिका ने अपने उपन्यासों में स्त्री तथा इससे जुड़े प्रश्नों को कथा का आधार बनाया है। उन्होंने जो प्रश्न उठाए वे अत्यंत आधुनिकतम है। उनकी स्त्री पात्रों में पैनी प्रश्नातुरता और संघर्षशीलता है। लेखिका की यह खूबी है कि इनकी स्त्री पात्र केवल लड़ने के लिए अपने विरोधियों से नहीं लड़ती। इसके पीछे मकसद होता है। यह मकसद होता है- स्त्री द्वारा खुद अपनी अस्मिता की तलाश और समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज करना। उनके सभी उपन्यासों में जुझारू नारी पात्र के दर्शन होते हैं। उन्होंने भारतीय परिवेश में नारी की स्थिति का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

**त्रियाहठ (2005)** विगलन और आंसुओं में वह ताकत कहां? जो कथा को सफल ही नहीं, सार्थक भी बना दे। इसी आधार पर 'बेतवा बहती रही' जिसने अपने विस्तारवादी प्रकृति से वास्तविकता और गल्प के अंतर को मिटा डाला। गल्प ही ऐसा सशक्त साधन है जो वास्तविकता को सच्चा भरोसा देता चलता है। 'त्रियाहठ' पात्रों के सच और झूठ की कहानी है। स्त्रियां अकसर ही खतरों से बचकर निकलने की कोशिश करती हैं। रचनाकार के रूप में भी वे यही मानकर चलती है कि हमारा समाज किसी अप्रत्याशित सच्चाई को स्वीकार करना नहीं चाहेगा। 'त्रियाहठ' उपन्यास में उर्वशी का बेटा देवेश अपनी मां की मौत के सच को जानना चाहता है। इसके लिए वह अथक प्रयास करता है। इस सच को जानने के लिए वे उर्वशी की सहेली मीरा से भी मिलता है लेकिन उसे पूरे सच का फिर भी ज्ञान नहीं होता। इस तरह उसे अंत में पता चलता है कि उर्वशी को

कोई दवाई दी जाती थी, जिस दवाई ने उर्वशी की रीड की हड्डी को कमज़ोर कर दिया। जिसके कारण वह अपाहिज हो गई। जिंदगी के फलक पर अपनी वास्तविकता में जब कभी अनहोनी प्रकट होती है तो उसे निश्चित ही मनुष्य द्वारा घटित नहीं, भाग्य और ईश्वर का किया मान लिया जाता है। जिस पर न कोई एतराज हो सकता है और न उसे किसी मानवीय तर्क की कसौटी पर कसा जा सकता है। यही कारण है कि स्त्री लेखन में 'अप्रत्याशित सत्य' की कौध अकसर आते-आते रह जाती है।

**गुनाह बेगुनाह (2011)** भारतीय समाज में ताकत का सबसे नजदीकी, सबसे देशी नृशंस चेहरा-पुलिस। इस उपन्यास में प्रमुख नायिका की भूमिका निभाती है इला चौधरी। जिसका सपना पुलिस में भर्ती होने का होता है लेकिन घरवाले बारहवीं की परीक्षा करने के बाद उसकी शादी करवाने वाले होते हैं। जिस दिन इला चौधरी की शादी होती है, उसी दिन इला चौधरी अपने सपने को पूरा करने के लिए घर से भाग जाती है। इसके पश्चात इला चौधरी अपने सपने को पूरा कर लेती है अर्थात पुलिस में भर्ती हो जाती है लेकिन वहां जाकर भी उसे निराशा ही हाथ लगती है। इला चौधरी देखती है कि यहां पर आई महिला मुज़रिमों का किस प्रकार शारीरिक शोषण किया जाता है। वह विचार करती है कि जिस जगह को सुरक्षित माना जाता है परंतु इसका आंतरिक रूप किसी और तरह का है। इला को यह सब देखकर बहुत ही ठेस पहुंचती है और अपने आप को कोसती है कि वह पुलिस कार्यालय में क्यों आई ? यह उपन्यास हमें दीवार के उस तरफ ले जाता है और उस रहस्य में दुनिया के कुछ दहशतनाक दृश्य दिखाता है और वह भी एक महिला पुलिसकर्मी की नज़रों से। इला जो अपने स्त्री वजूद को अर्थ देने और समाज के लिए कुछ कर गुजरने का हौसला लेकर खाकी वर्दी पहनती है, वहां जाकर देखती है कि वह चालाक, कुटिल लेकिन डरपोक मर्दों की दुनिया से निकल कर कुछ ऐसे मर्दों की दुनिया में आ गई है जो और भी ज्यादा क्रुर और हिंसालोलुप और स्त्रीभक्षक हैं। ऐसे मर्द जिनके पास वर्दी और बेल्ट की ताकत भी है। अपनी मर्दाना कुंठाओं को अंजाम देने की निरंकुशता भी और सरकारी तंत्र की अबूझता से भयभीत समाज की नज़रों से दूर, थाने की अंधेरी कोठियों में मिलने वाले रोज़-रोज़ के मौके भी। यह उपन्यास हमें बताता है कि मनुष्यता के खिलाफ सबसे वीभत्स दृश्य कहीं दूर युद्धों में मोर्चों और परमाणु

हमलों में नहीं, हमारे घरों से कुछ ही दूर सड़क के उस पार हमारे थानों में अंजाम दिए जाते हैं।

**फ़रिश्ते निकले (2014)** यह मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित एक ऐसा ही उपन्यास है जो पुरुष द्वारा नियंत्रित पितृसत्तात्मक समाज में रूढ़ मान्यताओं का शिकार होती बेला बहू के संघर्षों की कहानी है। इस उपन्यास की नायिका बेला बहु समाज के क्रुर सामंती व्यवस्था के तहत गरीबी और पितृविहीन होने के कारण बाल विवाह और अनमेल विवाह की भेंट चढ़ जाती है। बेला बहू एक स्कूल खोलती है जिसमें कुछ बच्चे दो दिन पाठशाला में आकर मानवता की भावना को ग्रहण करते हैं और समाज को शोषण से मिटाने के लिए नैतिकता का मार्ग अपनाते हैं। इस तरह बेला बहु विवाह के पश्चात और डाकू गिरोह में शामिल होने के बीच के संघर्षों का सामना अदम्य जिजीविषा को पार करती हुई एक निडर स्त्री की छवि को भी अंकित करती है। बेला बहू एक पितृविहीन बालिका होती है जिसने अभी-अभी अपने पिता को खो दिया है। बेला की मां किसी तरह अपना और अपनी बेटी का पालन पोषण करती है। शुगर सिंह नाम के अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ बेला की शादी हो जाती है। न जाने कितने अनमेल विवाह के किस्सों को याद करती, बेला ससुराल में निरंतर पति की हवस का शिकार होती है। विवाह के चार वर्षों के बाद भी संतान का न उत्पन्न होना और मेडिकल रिपोर्ट की जांच में बेला के स्वस्थ और उर्वरा होने का प्रमाण मिल जाता है और शुगर सिंह के नपुसंकता बेला बहू के सामने आ जाती है। विडंबना यह है कि गांव के लोग और स्वयं शुगर सिहं भी बेला बहू को ही बांझ मानते हैं। पुरुषों की कमियों की सजा भी स्त्री को ही भुगतनी पड़ती है। जिंदगी को नए सिरे से जीने के लिए भरत सिंह के यहां जाकर रहती है, पर मुसीबत वहां भी उसका साथ नहीं छोड़ती। बेला भरत सिंह और उसके भाइयों द्वारा निरंतर उनकी हवस का शिकार बनती है। अंत में अक्रामक रवैया अपनाते हुए भरत सिंह के भाइयों को आग के हवाले कर देती है। वह पूरे साहस के साथ अपने अत्याचार का बदला भी लेती है।

### 1.2.2 कहानी संग्रह का परिचय

**चिन्हार:-** 'चिन्हार' कहानी संग्रह आर्य प्रकाशन मंडल दिल्ली से 1998 में प्रकाशित हुआ है। इसमें कहानियां है- अपना-अपना आकाश, बेटी सहचर, बहलिए, मन नहिं दस-बीस, हवा बदल चुकी है, आक्षेप, कृतज्ञ, भंवर, सफर के बीच, केतकी, चिन्हार, मैं सोचती हूं आदि। इन सभी कहानियों में स्त्री-पुरुष के विभिन्न रूपों को अलग-अलग स्थितियों में लेखिका ने अपनी कथाओं में चित्रित किया है। 'अपना-अपना आकाश' में मां की व्यथा को व्यक्त किया है। बेटा कहता है "मां लगाओ अंगूठा।" मझले ने अंगूठे पर स्याही लगाने की तैयारी कर ली लेकिन उन्होंने चीकू से पैन मंगा कर टेढ़े-मेढे अक्षरों में बड़े मनोयोग से लिख दिया 'कैलाशो देवी'। उन्हें क्या पता था कि यह लिखावट उनके नाम चढ़ी, दस बीघे की ज़मीन को भी छीन ले जाएगी और आज से उनका बुढ़ापा रेहान चढ जाएगा। रिहान पर चढ़ा बुढ़ापा, बिकी हुई आस्थाएं, कुचले हुए सपने, धुंधला भविष्य इन्हीं दुख-दर्द की घटनाओं के ताने बाने से बुनी यह रचनाएं भारत के ग्रामीण समाज का आईना है। एक और आर्थिक प्रगति, दूसरी ओर शोषण का यह सनातन स्वरूप चाहे 'अपना-अपना आकाश' की अम्मा हो, 'चिन्हार' की सरजू, 'आक्षेप' की रमिया, 'भंवर' की विरमा सबकी अपनी-अपनी व्यथाएं है या अपनी-अपनी सीमाएं हैं। राजेंद्र यादव के अनुसार "सीमाओं से बंधी इन मरणोंन्मुखी मानव प्रतिमाओं का संपदन सहज ही सर्वत्र अनुभव होता है। प्राय: हर कहानी में लेखिका ने अपने जिए हुए परिवेश को जिस सहजता से प्रस्तुत किया है। जिस स्वभाविकता से उनकी अनेक रचनाएं, मात्र रचनाएं न बनकर, अपने समय का, अपने समाज का एक दस्तावेज बन गई हैं।"[18] अर्थात नई कहानी के विकास काल में लेखन के क्षेत्र में प्रतिष्ठा पाने वाली लेखिकाओं में सबसे पहले नारी के आंतरिक एवं बाह्य जीवन के पहलुओं को पहचानने की और समझने की कोशिश की। साथ ही साथ नारी की बदलती भूमिकाओं का स्वरूप प्रस्तुत कर जीवन के व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं को स्वर प्रदान किया है। इन समस्याओं के उभरने वाली परिस्थितियों में व्यक्ति किस तरह से जूझता है? यह भी अभिव्यक्त किया है।

**ललमनियां:-** यह कहानी संग्रह राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से 1996 में प्रकाशित हुआ है। इसमें फैसला, सिस्टर, सैधं, अब फूल नहीं खिलते, रिजक, बोझ, पगला गई भागवती, छांव, तुम किसकी हो बिन्नी, ललमनिया आदि कहानियां हैं। इन सभी

कहानियों में स्त्री समस्याओं एवं बाल मन की प्रतिक्रिया अकेलापन, बेटी की उपेक्षा, जिम्मेदारियों के प्रति आदर्श, अधिकारों के लिए संघर्षरत नारी, स्वार्थी नारी, विद्रोह का नया रूप, आर्थिक समस्या आदि विविध आयाम और परिपक्व दृष्टि का परिचय कहानियों में मिलता है। हर कहानी की अपनी अलग विशेषता है। मैत्रेयी पुष्पा ने नारी के अलग-अलग रूप को प्रस्तुत कर भारतीय समाज में नारी के अलग-अलग रूप को प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज में नारी के जिस पारंपरिक रूप की अवधारणा बनी हुई है, उससे नितांत भिन्न है जो परंपराएं नारी पर अन्याय अत्याचार करती हैं, उसके विरोध में स्त्री पात्र कहानी में संघर्ष करते दिखाई देते हैं। नारी की बदलती मानसिकता को दिखाया है। मैत्रेयी पुष्पा चाहती है कि नारी में जितनी दया, ममता, करुणा और सहनशक्ति है, अवसर आने पर विषम स्थितियों से जुझने के लिए इतनी कठोर और विद्रोही बन सकती है।

**गोमा हंसती है:-** कहानी संग्रह किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली से 2008 में प्रकाशित हुआ। इसमें शतरंज के खिलाड़ी, राय प्रवीण, बिछड़े हुए, प्रेमभाई एंड पार्टी, ताला खुला है पापा, सांप सीढ़ी, बारहवीं रात, गोमा हंसती है आदि कहानियां हैं। इन सभी कहानियों के केंद्र में नारी है। वह अपने सुखों-दुखों, यंत्रणाओं और यातनाओं में तप कर अपनी स्वतंत्र पहचान मांग रही हैं। उसका अपने प्रति ईमानदार होना ही बोल्ड होना है। यही नारी चेतना की पहचान है। उसके सिर उठाकर खड़े होने में भी समाज की पुरुषवादी मर्यादाएं टूटने लगती हैं। इस कहानी संग्रह में नारी की अनैतिकता को नहीं, नई नैतिकता को रेखांकित किया है। इन साधारण और छोटी कथाओं में निशब्द विद्रोह की कहानियां दिखाई देती हैं। इसमें नारीवादी घोषणाएं कहीं नहीं हैं। सिर्फ कहानी नहीं, कथा जगत की अविस्मरणीय घटना भी है। ये वे अनुभव हैं जो स्वयं विचार नहीं है, मगर उन्हीं के आधार पर विचार का स्वरूप बनता है। लेखिका लिखती है "नारी संघर्ष मुक्ति का संघर्ष है, स्त्री अपनी समस्या का निराकरण खुद संघर्ष झेल कर, करें।"[19] अर्थात नारी जीवन से संबंधित और विद्रोही व्यक्तित्व से जुड़ी सभी कहानियों के माध्यम से लेखिका यह संदेश देना चाहती है कि जीवन जीने का साहस वही करता है जो व्यक्ति निरंतर संघर्ष करता है और परिस्थिति के अनुसार जीना सीखता है।

**पियरी का सपना:-** 'पियरी का सपना' सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली से 2009 में प्रकाशित हुआ है। 'पियरी का सपना' उनका नवीनतम कहानी संग्रह है। इसमें मुस्कुराती औरतें, रिश्ते का नक्शा, आवारा न बन, छुटकारा, गुनाहगार, आरक्षित, पियरी का सपना आदि हैं। जिसमें वह अपने विकास और संपूर्ण सामर्थ्य के साथ मौजूद है। 'मुस्कुराती औरतें' जहां इस बात का जवाब देती है कि एल्बम के पहले पन्ने पर मुरली तस्वीर क्यों मौजूद है? वही 'रिश्ते का नक्शा' उस सच का पर्दाफाश करती है जो बताता है कि मोहल्ले के किसानों की नींद क्यों उड़ गई थी। 'आवारा न बन' की बॉक्सर लड़की का फुटकर गुस्सा हो या बदमाश से रिश्ता, 'छुटकारा' की जश्नों का टूटता दिल हो या बहुत पहले की चलन का सच, कथा की तल्लीन सलंग्नता उसे एक कथा शिल्पी की पहचान देती है। उसकी स्त्री किसी के द्वारा प्रदत सुरक्षा नहीं चाहती, सिर्फ अपना सामर्थ्य चाहती है ताकि कोई उसके चेहरे पर तेजाब न फेंक सके। 'गुनाहगार' की पंचायत और बहू 'आरक्षित' की साधना हो। मैत्रेयी पुष्पा समाज के हर हिस्से की स्त्री के सच का खुलासा कहानी में करते हुए एक जागरण अभियान ही चला रही हैं। 'पियरी का सपना' ही नहीं, प्रायः हर कहानी में कथाकार उस दखल से लड़ती नज़र आती है जो पूरी अराज-कता के साथ हमारे समाज में मौजूद है। यह कहानियां आंखें खोलते हुए, धुंध के पार ले जाने की ऐसी रचनात्मक कोशिश है। आज की कहानी में छूट गए सच को भरने की कोशिश देखनी हो या कहने का खूबसूरत अंदाज़, समय से टकराहट देखनी हो या बेखौफ स्त्री की जुबान और हिम्मत, मैत्रेयी पुष्पा एक प्रतिनिधि कथाकार का रोल निभाती नज़र आती हैं।

### 1.2.3 नाटक का परिचय

**मंदाक्राता:-** श्यामली आदर्श गांव में छोटे-बड़े, जात-पात का भेदभाव नहीं है। आपस में स्नेह, प्रेम, भाईचारा ऐसा था कि लोग मिसाल दें। लेकिन आज श्यामली के लोग अपनी परछाई तक, पर विश्वास नहीं कर पाते हैं। भाई-भाई के बीच रंजिश, घर में कलेश, न जाने कैसा ग्रहण लग गया है। श्यामली की अच्छाई में कुछ भी वैसा न रहा, सिवाय दादा के। बदलते वक्त की आंधी में एक ही बरगद बचा है। श्यामली की एक पुरानी कहावत है 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।' श्यामली का मन हार गया और सोनपुरा का मन जीत गया। एकता, प्रेम, भाईचारा,

सद्भाव सामाजिक चेतना आदि के बारे में हम बहुत बार भाषण सुनते रहते हैं और उन्हें किताबी बातें मानकर अनदेखा करते आए हैं लेकिन सोनपुरा ने इन शब्दों के मर्म को समझ लिया है। शायद और उन्हें दिनचर्या में उतार लिया है। इन बातों ने गांव के प्रति मेरी धारणा मेरे सरोकार और चिंतन को बेहद प्रभावित किया है। जिसे मैंने अपने उपन्यास 'इदन्नमम' के माध्यम से पाठकों के साथ बांटने की अपनी जिम्मेदारी को भरसक सावधानी और ईमानदारी से निर्वाह करने का प्रयास किया है। उसी उपन्यास पर आधारित है यह नाटक 'मंदाक्रांता'। जिसे लिखने के लिए मज़बूर हो जाती हूं।

### 1.2.4 निबंधों संग्रह

**खुली खिड़कियां:-** मैत्रेयी जी एक प्रभावी वक्ता, कहानीकार, उपन्यासकार तथा संवेदनशील साहित्यकार है। वह स्थितियों को सूक्ष्म दृष्टि से देखती हैं, जानती हैं, पढ़ती हैं, परंपरागत बंधनों को ठुकराने का साहस करती है। सभा, सम्मेलनों में, साहित्य के क्षेत्र में और अपने जीवन में निर्भय होकर अपने कार्य में सक्रिय रूप से जुड़ी हुई है। मैत्रेयी ने स्त्री विमर्श पर अनेक लेख लिखे। 'खुली खिड़कियां' में लिखे लेखों में मैत्रेयी ने नारी की व्यथा व्यक्त की है। जो सदियों से पुरुषों के अधीन है। उसके बारे में पुरुष निर्णय लेता है, इसी कारण पुरुषों के द्वारा शोषित हो रही है। लेखिका इन लेखों के द्वारा समाज को चुनौती देती है। स्त्री को स्वतंत्रता और समानता देने का प्रयास करती है। वह अपने सुखों-दुखों, यंत्रणाओं में तप कर अपनी स्वतंत्र पहचान मांग रही है। उसका अपने प्रति ईमानदार होना ही बोल्ड होता है हालांकि वह बिल्कुल ही नहीं जानती कि क्या है जिसे बोल्ड होने का नाम दिया जाता है। वह औरत को लेकर बनाई गई शील और नैतिकता पर पुनर्विचार की बात करती हैं। स्त्री के साथ हो रहे पक्षपात, रवैए का विरोध करती है। स्त्री जीवन भर रूढ़ियों और कुरीतियों के जाल में जकड़ी रहती है। इसे पार करने का उसका साहस उसे अपराधिनी घोषित करता है। स्त्री ने आज अपने लिए विकास के साधन जुटा लिए हैं, वह अपना जीवन झूठे असूलों में तबाह नहीं करती। चेतना संपन्न बनकर समाज को चेतावनी देती है। स्त्री द्वारा दी गई चुनौतियों को मर्यादा के नाम से खारिज किया जाता है। इन लेखों में मैत्रेयी स्त्री को दर्जा देकर समाज से खुली बहस करती है। इस समस्या को स्त्री की दृष्टि से

देखने और समझने की ज़रूरत पर ज़ोर देती है। नारी अपने बारे में सोचने लगी है। स्वतंत्र व्यक्तित्व की हैसियत से अपना दायित्व निर्वाह करने की क्षमता रखती है। परिवेशगत बाधाओं को दूर करने का प्रयास करती है। पितृसत्तात्मक समाज स्त्री के बारे में सोचना नहीं चाहता। वह स्त्री से समर्पण की अपेक्षा करता है। उसे एक वस्तु के रूप में देखता है। स्त्री की उपेक्षा करता है इसलिए स्त्री गुलाम बनना नहीं चाहती है। मुक्ति चाहती है। मानवीय अधिकार से प्रेरित होकर पुरुष के बराबर का दर्जा चाहती है। अपना अलग अस्तित्व बनाना चाहती है। मैत्रेयी ने पितृसत्तात्मक किले में स्त्री अस्मिता के प्रश्न को धर्म, संस्कृति, समाज, साहित्य, राजनीति, फिल्म और टेलिविज़न आदि खंडों में व्यापक रूप से विश्लेषण किया है। इन लेखों को 'खुली खिड़कियां' शीर्षक पुस्तक में संकलित किया है। इस संकलन का केंद्रीय सवाल है स्त्री होने के कारण स्त्री का जो दैहिक, मानसिक शोषण हो रहा है उससे वह कैसे मुक्त हों। डॉ. रंजना जायसवाल ने लिखा है "खुली खिड़कियां प्रतीक है- आज़ादी की। आज़ादी सिर्फ देह की नहीं, मन और विचार की भी। पर हमारी पितृव्यवस्था में ऐसा संभव नहीं है। संभव होने भी, नहीं दिया जाता। ऐसी जकड़न है कि स्त्री का शरीर व मन ही नहीं, विचार भी जकड़े हुए हैं, क्योंकि स्त्री को क्या पाना है, कैसे पाना है, तय करते ही आए हैं, वे ही और ये वे लोग हैं जिन्हें अगर सबसे अधिक चिढ़ है तो वह स्त्री की आजादी।" [20]

**धर्म:-** स्त्री मुक्ति के विचार को व्यवहारिक रूप देने में लेखिका सबसे बड़ी रुकावट धर्म को मानती है। उनके अनुसार भारत में धर्म सहिष्णुता के आधार पर नहीं, उग्र ताकतों के इशारे पर डराने और धमकाने का काम करता है। भारतीय संस्कृति में स्त्री के प्रति संवेदना नहीं है। वह रूढ़ियों और संस्कारों में जकड़ी है। पढ़ी-लिखी आधुनिक नारी भी करवाचौथ का व्रत करके पति की दीर्घायु की कामना करती है लेकिन हमारे समाज में पुरुष के लिए ऐसा कोई व्रत नहीं है।

**संस्कृति:-** भारतीय संस्कृति में स्त्री पति को सर्वस्व मानती है। सुहाग को प्राणों से प्रिय मानकर उस पर अटूट विश्वास, निष्ठा, श्रद्धा करती है लेकिन पुरुष उसके साथ कसाई जैसा बर्ताव करता है। पुरानी मान्यताओं के अनुसार लड़की का जन्म

होते ही उसकी हत्या कर दी जाती थी। बचपन से ही लड़की को सिर झुका कर जीने के संस्कार दिए जाते हैं।

**समाज:-** सदियों से चली आई परंपराओं को तोड़ने का साहस स्त्री ने किया है। अपराधों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाकर पक्षपाती समाज को चुनौती देकर और मान्यताओं की नैतिकता से छुटकारा पाना चाहती है।

**साहित्य:-** शोषण से मुक्ति मिलने के लिए लिखने की हिम्मत करनी चाहिए। साहित्य स्त्री को जागृत करके खुद को पहचानने की ताकत देता है। उसका अस्तित्व दिखाकर जीवन का अर्थ बताता है। स्त्री के विकास के लिए समकालीन साहित्य पढ़ना ज़रूरी है।

**राजनीति:-** राजनीति में भी स्त्री ने स्वतंत्र निर्णय क्षमता तथा हिम्मत से अपनी जगह बना ली है और दिखा दिया कि औरतों के पास गहराई से देखने की दृष्टि होती है। राजनीति में आकर भी पुरुष वर्चस्व में दबी ग्रामीण स्त्री को फैसला लेने का अधिकार नहीं होता था। प्रधान पद पर होते हुए भी फैसला पति ही लेता था। वह कठपुतली की तरह काम करती थी।

**फिल्म और टेलीविजन:-** आज़ादी के बाद स्त्री समानाधिकार पाने के लिए प्रेरित हुई तो दूरदर्शन धारावाहिकों ने स्त्री विरोधी जाल बुनकर सास-बहू का ऐसा चक्कर चलाया कि स्त्री की आज़ादी का नशा उसमें ही खो गया। धारावाहिकों में स्त्री को बराबरी का दर्जा नहीं मिला। राजस्थान में भंवरी भाई बलात्कार कांड पर जगमोहन मुंछड़ा की फिल्म “बवंडर" में कोर्ट में कितनी गंदी, अश्लील और अपमानजनक बहसें सुननी पड़ी। इस लेख में कुछ चिंताएं हैं और कुछ चेतावनियां भी हैं। 'खुली खिड़कियों' में मैत्रेयी ने नेतृत्व का अधिकार मांगने और अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने की प्रेरणा देकर खिड़कियों को खोलने का प्रयास किया। इसकी पहल स्त्रियों को ही करनी होगी।

**सुनो मालिक सुनो:-** ‘सुनो मालिक सुनो' के वैचारिक लेख द्वारा मैत्रेयी, मालिकों से रक्षा की पुकार नहीं करती बल्कि वह अपनी नायिकाओं को खुलेआम लक्ष्मण रेखा लाघनें की चुनौती देती है। वह नायिका को नैतिकता के मामले में पूरी छूट देकर कहती है- स्त्री स्वयं नैतिकता का फैसला करेगी। "यदि वह मर्यादा हमें जीने

नहीं देती, विकसित होने में रोड़ा अटकाती हैं तो यह हमारे काम की नहीं।"[21] पुरुष सत्ता की क्रूर अमानवीय संरचना में स्त्री की स्थिति का जायजा लेते हुए इस विश्लेषण में स्त्री के स्वपन हैं, इच्छाएं हैं, व्याथाओं के साथ ही आशा, प्रेम और आकांक्षा से लबरेज भविष्य की स्त्री है। स्त्री की असहनीय पीड़ा से मुक्ति की आकांक्षा में आक्रोश और ललकार से भरी किताब है। यहां डॉ. दया दीक्षित ने लिखा है "मैत्रेयी युगधर्मिता, स्वतंत्रचेता, रचनाकार के रूप में विख्यात है। उनकी कृतियां 'खुली खिड़कियां' तथा 'सुनो मालिक सुनो' उन्हें एक जागरूक जनता के विशिष्ट रूप में प्रस्तुत करती हैं। यह चिंतन कृतियां समय समाज को निर्णायक मोड़ देने में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह कर रही हैं। कह सकते हैं कि अपने सैद्धांतिकी में ये सामाजिक न्याय का संविधान रचती हैं।"[22] वैदिक काल से कन्यादान की प्रथा जारी थी। वर्तमान युग में यह सौदेबाजी में बदल गई। दहेज़ देकर लड़की को पिता की संपत्ति से बेदखल किया जाता है। ससुराल की संपत्ति पर भी उसका अधिकार नहीं रहता। यह दोनों परिवारों को सुखी देखने के लिए खुद दुख सहती है। इसी कारण अपनी जगह नहीं बना पाती। बचपन से ही बेटी को पराया धन मान कर बड़ा किया जाता है। उसके बारे में निर्णय पुरुष लेते हैं। पिता अपनी हैसियत बनाए रखने के लिए बड़े ही ठाठ से विवाह करता है लेकिन दहेज़ लेने वाला तथा दहेज़ देने वाला पिता दोनों की बर्बादी का कारण बनते हैं। लेखिका कहना चाहती है कि स्त्री को मुक्ति मिलने के लिए संबंधों में छुटकारा पाना ज़रूरी है। सदियों से चले आ रहे रिवाज़ बदलने को अपने हक के प्रति जागृत होकर लड़ना चाहिए। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को कमज़ोर मानकर सुरक्षा के नाम पर गुलाम बनाया है। न्याय पाने के लिए स्त्री को ही आगे आकर अन्याय का प्रतिकार करना चाहिए। लड़की को ही दहेज़ लेने वाले के साथ शादी न करने का फैसला लेना चाहिए। दहेज़ के विरोध में बेटी को पढ़ा लिखा कर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना ज़रूरी है ताकि वह स्वाभिमान तथा सम्मान से जी सके। अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर सफल बनने की ज़रुरत है। लेखिका के उपन्यास पढ़कर गांव की औरतों में भी बदलाव आया है। लेखिका ने 'सुनो मालिक सुनो' के लेख में इसका उल्लेख किया है। सुलक्षणा ने मैत्रेयी को पत्र में लिखा है- "आपकी उपन्यास पढ़ कर दिमाग खराब हो गया है, यह बात मेरे पति कहते हैं। मैं अब बहस करती हूं जबकि पहले केवल सुनती

थी...आपकी कलम की मेहरबानी मेरी कलम पर ऐसी हुई कि अपनी जिंदगी से परेशान होकर पिता को खत लिख बैठी।"[23] स्त्री अपने हक के प्रति जागृत होकर पितृसत्तात्मक समाज की असलियत जान चुकी है। मैत्रेयी ने पुरुष वर्चस्व का पर्दाफाश किया है जो स्त्री के साथ अश्लीलता से पेश आकर पशु जैसा बर्ताव करते हैं। लेखिका अनामिका को याद करती है जिन्होंने अपनी कविता में विवाहित स्त्री की व्यथा कही है- ''मैं एक दरवाज़ा थी। मुझे जितना पीटा गया। मैं उतना ही खुलती गई।"[24] पुरुष समाज तथा परिवार में वर्चस्व बना कर स्त्री को प्रताड़ित करता है। मैत्रेयी ने 'सुनो मालिक सुनो' के लेख में लिखा है- "लड़की जगमगाती जिंदगी का सुदृढ़ आधार उसका पति ही होगा, ऐसी मान्यता है। ऐसा विधान पुरुषों ने पुरुषों के लिए नहीं बनाया। उसको अपनी अविवाहित देह अपराध नहीं लगती।"[25] पुरुषों के षड्यंत्र को समझकर, स्त्री जान गई है कि पुरुषों की तरह स्त्री का अविवाहित रहना अपराध नहीं है। अपनी योग्यता से श्रेष्ठता का परिचय देकर पुरुषों से बढ़कर साबित हुई है। स्त्री देह से ऊपर उठकर अपने लिए फैसला करती है तो पितृसत्ता का आसन डगमगाने लगता है। आज की नारी स्वतंत्र रूप से अपना अस्तित्व बनाकर व्यक्तित्व का विकास करना चाहती है। अपने स्त्रियोचित्त गुणों को ठुकरा कर तलाक़ की मांग करते हुए कहती है- "घर टूटने की घटना ज़िन्दगी टूटने से ज्यादा त्रासद नहीं। विवाह किसी स्वर्ग में बंधी गांठ नहीं, मन का मामला है। स्त्री को इसकी पवित्र व्याख्या समझाकर गुलामी के लिए तैयार किया जाता रहा है। वरना वह तो जहां भी जाती है, घर बना लेती है, जहां से चली आती है, घर टूट जाता है...।"[26] मैत्रेयी अपने लेखन में पितृप्रधान समाज का विरोध करने से नहीं डरती। अन्याय का प्रतिकार करके न्याय पाने के लिए जूझती है। महिलाओं का यौन शोषण सदियों से हो रहा है। हमारे समाज में लड़की अपनी योनि के कारण असुरक्षित है। आज की सभ्य, शिक्षित नारी स्वतंत्र नहीं है। स्वार्थ पर मानसिकता या क्रूरता से बालिकाओं को उपभोग की वस्तु बनाकर उनका शोषण हो रहा है। घर से लेकर मठों तक स्त्री के साथ बलात्कार होता है। स्त्री की योग्यता और क्षमता से राजनीतिक पुरुष डरते हैं कि स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सजग होने के कारण उसे विधानमंडल का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। एक ओर स्त्री सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया जाता है तो दूसरी ओर आरक्षक विधेयक को गतिरोध मानकर

रास्ते से हटाया जाता है। स्त्रियों के बराबरी से चुने जाने के अधिकार का हनन किया जाता है। महिला दिवस और स्त्री सशक्तिकरण वर्ष सिर्फ दिखावा है।

**चर्चा हमारा:-** 'चर्चा हमारा' लेखिका का स्त्री विमर्श की दृष्टि से लिखे गए महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है। इसमें कही गई बातों का उल्लेख तो उनकी रचनाओं में ही हो चुका है। पुनरावृत्ति को छोड़कर मैंने मैत्रेयी के अन्य विचारों को इसमें प्रस्तुत किया है। मैत्रेयी ने पुरातन रूढ़ियों, परंपराओं का विरोध करके निर्भयता पूर्वक अपने विचारों को व्यक्त किया है। 'चर्चा हमारा' की भूमिका में मैत्रेयी ने लिखा है- "चर्चा हमारा में जहां आप पाएंगे स्त्री लेखन की चुनौतियों पर गंभीर चिंतन, वही सामंती पुरुष पक्ष के उड़ती धज्जियां भी नज़र आएंगी।"[27] स्त्री की समस्याओं को स्त्री ही समझ सकती है। मैत्रेयी ने स्त्री के लिए बनाई अलग नैतिकता, पुरुष वर्चस्व के कारण नारी पर हो रहा अत्याचार, शारीरिक और मानसिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास अपने लेखन में किया है। मैत्रेयी स्त्रियों के लिए समानाधिकार की मांग करती है- "स्त्री समाज को रचती है और समाज स्त्री को रचता है। जिन्हें वह अपने गर्भ में पाल कर दुनिया में लाती हैं, जिन्हें उंगली पकड़कर चलना सिखाती हैं, वहीं उनके चाल चलन का हिसाब रखने लगते हैं यह स्त्री की नियति है।"[28] स्त्री अपने लिए जीवन नहीं जीती। वह अपने प्यार का त्याग करके पिता, पति, पुत्र के लिए बलिदान करती है। हमारे ऋषि-मुनियों ने स्त्री को नियमों में कस कर ऐसा जाल बनाया, जिससे उसे पुरुषों के अधीन बना दिया। पुरुषों के इन नियमों को, अन्याय को जो स्त्री सहती है, वह पवित्र मानी जाती है। इसका तिरस्कार करने वाली कुलटा कहलाती है। धर्म के नाम के साथ धोखाधड़ी करके उसे गुलाम बनाया। उसके साथ किए जाने वाले भेदभाव के ख़िलाफ़ वह जागृत हुई है। वह शोषण के ख़िलाफ़ विद्रोह करके अपने बारे में सोचने लगी। अपनी शक्ति को पहचान कर उसने स्वयं के बारे में लिखना शुरु किया है। घर की चारदीवारी से बाहर आकर निर्भय होकर राजनीति में भी भाग लेने लगी है। वह समाज के नियमों को ठुकरा कर स्त्री के साथ होने वाले अन्याय को हटाकर स्त्री को न्याय देना चाहती है। पुरुष वर्चस्व ठुकरा कर, अपनी रक्षा करती है। दीन, हीन, लाचार बन कर नहीं जीना चाहती। जन्म से लेकर स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं है परंतु पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्री को देह मानकर अनेक बन्धनों में जकड़ दिया जाता है। पुरुष उसका रक्षक तथा

भक्षक बन जाता है। स्त्री जो सोचती है वैसा सोचने के लिए मज़बूर किया जाता है। मैत्रेयी ने अपनी नायिकाओं में यह साहस भर दिया है कि वह परिस्थितियों से जूझ कर देह के बल पर विजयी होती है। पुरुष के सामने चुनौती बनकर गांव तथा समाज का नेतृत्व करती हैं। भ्रष्टाचार की जड़ों को उखाड़ना चाहती हैं। पुरुष नारी को घर की चारदीवारी से कैद करके गुलाम बनाता है, पर अब पढ़ कर, लिख कर नारी अपने अस्तित्व के प्रति सचेत हुई है। लेखिका का साहित्य पढ़कर स्त्रियों में बल आया है। उनकी रचनाएं स्त्रियों के लिए प्रेरणा बन गई हैं। जहां औरत, औरत की दुश्मन नहीं, सखी नज़र आती है। स्त्री देह के कारण अन्याय सहती आई है। अपराध पुरुष करता है और दोषी स्त्री को माना जाता है। पुरुष अपराधी होकर भी सही सलामत छूट जाता है। अपराधी नहीं कहलाता। मैंत्रेयी स्त्री के लिए बनाई नैतिकता का पर्दाफाश करती है। परंपराओं और रीति-रिवाजों ने स्त्री का जीवन खोखला बनाया है। विवाह के नाम पर स्त्री को बंदी बनाया जाता है। पुरुष स्त्री को सिर्फ देह रूप में देखता है। अब स्त्री पुरुष के षड्यंत्र को समझ गई है। वह अपने अधिकारों को जान गई है। समाज में बराबरी का दर्जा चाहती है। लड़कियां अपने कैरियर के प्रति जागृत हो गई हैं। समाज में बराबरी का दर्जा चाहती हैं। अपनी इच्छा से स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना चाहती हैं। आज स्त्री हर क्षेत्र में आगे है। उसने अपनी सामर्थ्य से हर क्षेत्र में विजय हासिल की है।

### 1.2.5 आत्मकथा

**कस्तूरी कुंडल बसै:-** यह आत्मकथा 2002 में प्रकाशित हो गई थी। लेखिका ने अल्पावधि में ही हिंदी साहित्य में अपनी धाक जमा दी लेकिन ऐसे बहुत कम रचनाकार होते हैं जो आत्मकथा जैसी विधा को हाथ डालते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने यह जोखिम उठाकर भी इस विधा में सफलता पाई है। मैत्रेयी पुष्पा से जब यह सवाल किया कि उन्होंने इतनी जल्दी आत्मकथा क्यों लिखी जबकि बड़े-बड़े लेखक आत्मकथा लिखने से हिचकाते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया- "मुझे यह लगा की आत्मकथा लिखने के लिए ईसा और मंसूर जैसी नैतिकता होनी चाहिए। चेहरा, नाम और पहचान बदलकर तो लेखक सब पर कोड़े और फूल बरसाता ही रहता है। इसीलिए आत्मकथा एक आत्मविमर्श भी है। मैंने कई आत्मकथा पढीं थी। मेरी

इच्छा थी कि मैं आत्मनिरपेक्ष होकर आत्मवृत्त लिखूं। 'हंस' का स्त्री विशेषांक निकल रहा था। अर्चना वर्मा वंश परंपरा पर कुछ ऐसा चाह रही थी। मुझे मां याद आ गई। उनका व्यवहार मेरे साथ अटपटा बर्ताव। उनके कारण रिश्तों के न जाने कितने, अनदेखे अंधेरे-उजाले तो मैंने लिखना शुरू किया। खुद को...मां को। यह ज़रूर है इसमें चालबाजियां नहीं है।"[29] मैत्रेयी अपने होने के अर्थ को अपनी मां कस्तूरी देवी के होने में तलाशती है। इसीलिए यह जितनी आत्मकथा है, इससे अधिक मां की जीवन कथा। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है "मैत्रेयी पुष्पा का यह आत्मकथात्मक उपन्यास पढ़ते हुए तस्लीमा नसरीन की आत्मकथा 'मेरे बचपन के दिन' और दलित मराठी पृष्ठभूमि की लेखिका कौशल्या बैसंत्ती के आत्मकथात्मक उपन्यास 'दोहरा अभिशाप' का स्मरण हो आना स्वाभाविक है क्योंकि इन तीनों लेखिकाओं ने अपने वज़ूद को अपनी मां के व्यक्तित्व में तलाशा है। अंतर इतना अवश्य है कि जहां तस्लीमा नसरीन और कौशल्या वैसत्ती के आत्मवृतातों में मां और बेटी एक-दूसरे के पूरक व सहयात्री हैं, वहीं मैत्रेयी पुष्पा के आत्मवृतातं में मां और बेटी के संबंध कई जटिलताओं से युक्त हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने इस आत्मवृत्त में मां और बेटी के अंतर्द्वंद और टकराहट के कई आयाम हैं। कथा में मैत्रेयी के जन्म से पूर्व से लेकर उनके मां बनने तथा लेखिका बनने तक का सफ़र दर्ज है। मैत्रेयी पुष्पा के लेखकीय व्यक्तित्व निर्माण में उनके वंचित बचपन व अभावों से भरी-पूरी, असुरक्षित किशोरावस्था तक की कथा व्यथा है। इस आत्मकथा में मैत्रेयी अकसर अपने अनुभवों के आधार पर तथा अपनी सोच के अनुसार कस्तूरी को कठोर, जिद्दी, भावशून्य तथा अहंकारी ठहराती है लेकिन जैसे-जैसे मैत्रेयी की उम्र बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उसका मां के प्रति लगाव दुराव घटता-बढ़ता जाता है। आत्मकथा के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने जीवन के कितने ही कटु शक्तियों को पाठक के सम्मुख उगाड़ दिया है। इसमें न उन्होंने मां को छोड़ा है न ही अपने पति की विचारधारा को प्रश्रय दिया है। विजय बहादुर सिंह कहते हैं "कस्तूरी कुंडल बसै में उन्होंने स्त्री का जैसा आत्मदर्शन किया है, वह आत्मकथा के बहाने आत्मविमर्श भी है। यह आत्मविमर्श उस स्त्री का भी है जो बेटी तो है लेकिन जिसके आगे पीछे मां-पिता, रिश्ते नाते, प्रेमी पति तथा पुत्र-पुत्रियां जुड़े हैं। इस आत्मकथा को पढ़कर ऐसा लगता है कि मैत्रेयी का स्त्री विमर्श, परिवार विमर्श भी है और समाज

विमर्श भी। यह परंपरा विमर्श अगर है तो आधुनिकता और इतिहास विमर्श भी।"[30]

**गुड़िया भीतर गुड़िया:-** मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा के दूसरे खंड "गुड़िया भीतर गुड़िया" में लेखिका पुरुष वर्चस्व, पुरुष के स्त्री विरोधी विचार, घर परिवार और दांपत्य के अन्याय को दर्ज करती नज़र आती हैं। उनका मानना था कि विवाह स्त्री की युवा उम्र को सुरक्षा देता है लेकिन धीरे-धीरे उन्हें विवाह संस्था से विरक्ति होने लगती है। इसके बाद उन्होंने लिखना शुरू कर दिया। लिख कर उन्होंने पाया कि वे तथाकथित सामाजिक व्यवस्था से खुद को मुक्त कर रही है। इस आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी किशोरावस्था, वैवाहिक जीवन और लेखक बनने की कथा लिखी है। बचपन में ही प्रेम किया, प्रेम से उल्लासित हुई। प्रेम का दुख भी झेला और बेवफाई का दर्द सहा। जब पढ़ने के लिए गुरुकुल गई तो वहां उन्होंने देखा कि पढ़ने वाले लड़कों से कई गुना ख़तरनाक शिक्षक और प्रिंसिपल थे। वे पी.एच.डी करना चाहती थी पर कर न पाई। हर नाज़ायज तरीके से इसे रोक दिया गया। वह अपने पति के मित्र डॉ. सिद्धार्थ से खुलकर बात करती तो इस पर भी उसके पति ने एतराज व्यक्त किया। इस शक का मूल कारण था कि पुष्पा एक पार्टी में डॉ. सिद्धार्थ के साथ नाचती है। आत्मकथा में लेखिका ने नई परंपराओं की मांग भी की है। वह स्त्री की स्वाधीनता की रक्षा की बात उठाती है। भाग्य के सहारे सब कुछ को छोड़ देना उचित नहीं मानती। इस आत्मकथा के माध्यम से मैत्रेयी ने विवाह संस्था के औचित्य और सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा किया है। स्त्री जीवन में शादी एक महत्वपूर्ण परिवर्तन लेकर आती है। शादी के बाद औरत भूल जाती है, अपना कुल, नाम, गोत्र और जाति। लेखिका का कहना है कि औरतें केवल शरीर रूप में होती है, पुरुषों की सेवा सुविधा के लिए श्रम करती है और उनसे अपेक्षा की जाती है कि पुत्रवती होकर वंशवेल बढ़ाएं। एक के बाद एक, तीन बेटियों को जन्म दिया तो उनकी वही गति हुई जो आम तौर पर स्त्रियों की होती है। लेखिका बताती है कि जब उनके पास तीन बेटियां हुई तो उन पर परिवार की तरफ से दबाव बना और मुझे मानसिक पीड़ा मिली। जिससे बचने के लिए वह व्रत और पूजा पाठ करने लगी। यह एक औरत पर पड़ने वाले सामाजिक दबाव का ही नतीजा था क्योंकि घर में वंश चलाने के लिए बेटा चाहिए था। वह घर परिवार का विरोध नहीं करती,

उनका स्त्रीवाद, घर परिवार संरचनाओं का विरोधी नहीं है, बस परिवर्तन चाहती हैं। वह पुरुष सत्तात्मक समाज में जो स्त्रियों की दयनीय स्थिति है, उसको नकारती है। वह किसी भरोसेमंद जीवनसाथी के रूप में पति को पाना भी चाहती है। अपने पति से लाख असहमति रहते हुए भी उसे अपने दुश्मन के रूप में चित्रित नहीं करती। वे ऐसा परिवार चाहती हैं जिसमें सब बराबर हों। जिसमें स्त्री एक गुलाम, दासी न मानी जाए। उसका स्वतंत्र वज़ूद हो। इस पुस्तक में पुष्पा स्त्री विमर्श को एक नई दिशा देती नज़र आती हैं।

### 1.2.6 संस्मरण

**फाइटर की डायरी:-** मैत्रेयी ने 'फाइटर की डायरी' कृति हरियाणा पुलिस अकादमी में जाकर वहां की महिला पुलिस प्रशिक्षणार्थियों के बीच रहकर लिखी है। इसमें उन्होंने महिला पुलिस प्रशिक्षणार्थी के जीवन संघर्ष, समस्याओं और सच्चाई को जानकर बड़ी ही मार्मिक ढंग से एक सहयोगी मार्गदर्शक तथा मां बन कर उनकी समस्याओं को सुना तथा सुलझाने का प्रयास भी किया है। यह एक ऐसी संस्मरणात्मक कृति है जिसमें लेखिका ने स्त्री जीवन के सत्य को समेटने का जटिल काम किया है। इसमें उन्होंने स्त्री के जीवन संघर्षों का साक्षात्कार किया है। कुछ भाग डायरी के रूप में है तो कुछ भाग में इन लड़कियों के साथ सीधे-सीधे संवाद भी साधा जाता है। कहीं-कहीं लेखिका ने कहानी के रूप में परीक्षणार्थी के अनुभवों की सच्चाई का मार्मिक तथा हृदय विदारक वर्णन किया है। इस समाज में लड़की को क्या-क्या सहना पड़ता है? ऐसे कई जाने-अनजाने प्रसंगों को चित्रित किया है जो सचमुच दिल दहला देने वाले हैं। समाज के भेड़ियों से बचने के लिए लड़की को लड़का बन कर भी रहना पड़ता है। 'फाइटर की डायरी' में लेखिका ने गांव के उन लड़कियों की संघर्ष की कथा कही है जो लड़की होने की सारी यातनाओं तथा प्रताड़नाओं को सहती हैं। इससे निजात पाने के लिए वह उस पर होने वाले अन्याय के खिलाफ जुझने का संकल्प करती हुई सिपाही तथा सब इंस्पेक्टर बनने के लिए पुलिस अकादमी में आई है। उन्होंने यहां आने का साहस करके बंधनों को तोड़कर मानसिक आज़ादी हासिल की है। यहां आई हुई लड़कियां पुरुष प्रधान व्यवस्था को चुनौती देकर स्त्री मुक्ति का प्रयास करती दिखाई देती हैं। मैत्रेयी का यह संस्मरण स्त्री सशक्तिकरण का

प्रतीक है। पितृसतात्मक समाज में संगीता, शबनम, ज्योति, पूजा, ममता, सुनीता, कुलबीर, अंशु, गीता जैसी अनगिनत लड़कियों को कदम-कदम पर समाज के भेड़ियों से रोज़ जूझना पड़ता है। मैत्रेयी ने पुलिस में आने वाली ग्रामीण परिवारों की लड़कियों की जिंदगी का सत्य जानकर, उनके सहारे समाज का सजीव चित्रण किया है। जिनकी व्यथा अलग-अलग होकर भी यहां आने का मकसद एक ही है- पितृसत्तात्मक सत्ता से मुक्ति। वह किसी पर निर्भर रहकर जीना नहीं चाहती। अपनी सुरक्षा की सामर्थ्य रखती है। आत्मनिर्भर बनकर स्वाभिमान से जीने का संकल्प करती हैं। डॉ. विजय दीक्षित से हुई बातचीत में लेखिका कहती है:- "लड़कियों की बहादुरी ने मुझे लिखने के लिए मज़बूर किया। पितृसत्तात्मक समाज सब को डराता है, मैंने माना लेकिन इस पर भी गौर किया जाए कि जो डराने की जिद्द पर आ जाए, समझिए कि वह सबसे ज्यादा डरता है। 'फाइटर की डायरी' नाम की किताब जो मैंने लिखी है उसमें पितृसत्तात्मक समाज के मान्यता प्राप्त अपराध खुलते चले जाते हैं। चुनौती मैं नहीं, लड़कियां देती हैं।"[31] अम्मा मुझे पहचानो, मैत्रेयी ने हिना नामक मुस्लिम युवती की संघर्ष गाथा कही है। हिना खान सदियों से चलती आई परंपरा का विरोध करती है "नहीं शादी नहीं। मैं घर से भाग जाऊंगी। अम्मी के सामने यह कहा तो अम्मी की आंखें कौड़ी की तरह खुली रह गई। उनके होठों में हरकत थी जैसे कह रही हो भाग जाएगी ! भाग जाएगी ! उन्होंने जो साफ़ तौर पर कहा, वह तीर की तरह चुभा हिना को, भाग जा, रंडियों के कोठे पर बैठ जाना और तू करेगी क्या ?"[32] लड़की जो परंपरा को तोड़कर कुछ अलग करने का साहस करती है तो उसे रंडी कहकर तिरस्कृत किया जाता है। इसी भय से लड़कियां अन्याय और अत्याचार सहती हैं। चारदीवारी में अपने सपने को दबाकर घुट-घुट कर जीवन जीती हैं। घर से बाहर निकलने का साहस नहीं जुटा पाती। 'फाइटर की डायरी' लड़कियों के अन्याय का प्रतिकार करने का बल रखती है। हिना अनुभव तथा ज्ञान संपन्न युवती है। अपनी योग्यता को पहचान कर वह ताकतवर बनने का संकल्प करती है। औरत, मर्द के मुकाबले संवेदनशील होती है। उसका स्वभाव हिंसक नहीं होता, मगर अपनी संवेदनशीलता बचाने के लिए भी ताकत चाहिए। सिद्ध कर सके उसकी संवेदनशीलता, कमज़ोरी नहीं होती। हमदर्दी को निर्बलता मत कहो। यदि कहते या मानती ही रहोगे तो लड़कियों को

वहीं वर्दी, वही रायफल, वही बेल्ट चाहिए जो कमज़ोरों, नाइंसाफी के लिए लड़ती है।"[33] 'फाइटर की डायरी' की स्त्रियां तमाम संघर्षों के बावजूद अपनी जिजीविषा कायम रखते हुए मुश्किलों का सामना करती हुई दिखाई देती हैं। इसके साथ-साथ अपने जीवन की लड़ाई स्वयं लड़ने की सामर्थ्य रखते हुए समाज के सामने आदर्श रखती हैं। नीलम और दादी के बीच का संवाद स्त्री जीवन की व्यथा कथा प्रस्तुत करता है। "बेटी इस घर में हमारी मंशा कब चली है? सो हमने अपनी इच्छाएं उजागर ही नहीं करी। तू बुरा मान गई लीलू, मैंने यही तो कहीं की पोता अपने दादा का नाम रोशन करेगा। जे तो नहीं कहीं की दादी का नाम रोशन करेगा। बेटा, मैं हूं या तू हो, तू हो सबको एक ही रह जाना है, जो राह घर के मर्द बता दें। अब तू ही बता कि इस घर में मेरा क्या है? कौन सी जगह है मेरी? तेरे दादा मेरे तो घर द्वार, खेत-खलिहान तेरे बाप के नाम कर गए। जन्म ज़िन्दगी से जेई रिती आ रही है हमारे लिए? कहते-कहते दादी रोने लगी।"[34] दादी सदियों से चली आ रही स्त्री जीवन की व्यथा बताकर इससे मुक्ति पाना चाहती है। अपनी दर्द भरी बातों से बदलाव की ओर संकेत करती हैं। 'फाइटर की डायरी' की लड़कियां पुरुषों के अमानवीय बर्ताव के खिलाफ़ विद्रोह करती हैं।

## 1.3 सम्मान एवं पुरस्कार

1) 'फैसला' कहानी पर 'वसुमति की चिट्ठी' यह टेलीफिल्म बनी। 'फैसला' पर सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार।
2) 'इदन्नमम' पर आधारित 'सॉन्ग एंड ड्रामा' द्वारा छायाचित्रों को निर्मित किया।
3) हिंदी अकादमी द्वारा 'साहित्य कृति सम्मान'।
4) 'बेतवा बहती रही' उपन्यास के लिए 1995 में उत्तर प्रदेश प्रशासन की तरफ से प्रेमचंद सम्मान।
5) 'इदन्नमम' को बैंगलोर स्वासती संस्था की तरफ से 'नजनागूडू तिरुमलंबा पुरस्कार'।
6) 'कही ईसुरी फाग' को मध्य प्रदेश साहित्य परिषद से 'वीरसिंह देव पुरस्कार'।
7) हिंदी अकादमी द्वारा उनकी रचनाओं के लिए 1996-97 में साहित्यिक सम्मान।

8) 'सार्क लिटरेरी अवॉर्ड' और 'द हंगर प्रोजेक्ट' द्वारा 'सरोजनी नायडू पुरस्कार'।
9) 'चाक' उपन्यास को विशेष रूप से स्त्री विमर्श के संदर्भ में राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक पुरस्कार।
10) समग्र साहित्य के लिए 'वनमाली सम्मान' से 2011 में पुरस्कृत।

मैत्रेयी पुष्पा का संपूर्ण साहित्य हिंदी साहित्य जगत की अमूल्य निधि है। उनकी रचनाओं का अध्ययन करने के पश्चात यह ज्ञात होता है कि वह मौलिक सृजक और प्रखर चिंतक भी हैं। लेखिका ग्रामीण परिवेश में पली-बढ़ी। शहर में निवास करने के बाद भी उनका झुकाव गांव की तरफ ही रहा। मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्रियों की समस्याओं से संबंधित साहित्य रचनाओं के माध्यम से महिलाओं को अपने अधिकारों के बारे में प्रेरित किया। उनके साहित्य में अधिकतर स्त्रियां अधिकारों के प्रति संघर्षरत हैं। महिलाओं को उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं मानसिक रूप से सक्षम बनाने का प्रयास किया है। नारी को स्वतंत्र विचार प्रदान कर, उसे पुरुष की शोषणमूलक मानसिकता से मुक्त किया है। समाज में सभ्यता के आचरण में दबी हुई सच्चाई को उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। भले ही यह सच्चाई कड़वी हो। जाति-पाति की निंदा की है। मात्र निंदा कर साहित्यिक धर्म ही नहीं निभाया बल्कि अपनी बेटी सुजाता का अंतर्जातीय विवाह कर कथनी को करनी में बदल कर एक मिसाल कायम की है। लेखिका के जीवन पर बुंदेलखंड अंचल का प्रभाव पड़ा है। जीवन में जो लिया उसे स्पष्ट शब्दों में बयान करने के बाद लेखिका विख्यात हुई है। मैत्रेयी पुष्पा की जीवन शैली बेबाक है। स्त्री विमर्श की कट्टर हिमायती, स्त्री को चारों ओर से बंधन में डालने वाली पूरी व्यवस्था से उन्हें चिढ़ है। जहां पुरुष की आशाएं, आकांक्षाएं और ज़िन्दगी पिसने लगी तो वहां पर नीति-अनीति की बात को व्यर्थ मानती हैं। अपने लेखन में वह हमेशा जीवन के पक्ष में खड़ी रहती हैं। सत्य प्रतिपादन उनके साहित्य की विशेषता है। इस सत्य प्रतिपादन का उद्देश्य पुरुष मानसिकता में परिवर्तन की अपेक्षा रखता है।

मैत्रेयी पुष्पा के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिस पड़ाव पर लोग अपने जीवन का उद्देश्य खत्म हुआ मानकर चलते हैं, तब साहित्य के क्षेत्र में कदम रखा है। मात्र दस वर्ष की अवधि में हिंदी की विख्यात लेखिका हुई हैं।

अनुभूति ने साहित्य को क्षमता दी है। जन्म से ब्राह्मण है लेकिन जीवन का अधिकांश समय यादवों के साथ बीता है। ग्रामीण और शहरी संस्कृति को एक

साथ अपने साहित्य में उतारने वाली लेखिका हैं। नारी के प्रति होने वाले अन्याय को पूरी क्षमता के साथ विरोध करती हैं। बात करना, कोई भी पर्दा न रखते हुए लेखन करना अत्यंत कठिन कार्य किया है ।

**संदर्भ सूची:-**


1. जाधव एस. एस., प्रेमचंद और हरिनारायण आप्टे के उपन्यासों में व्यक्त सामाजिक चिंतन, पृ.53
2. डॉ. वसीम अहमद खान, सामान्य मनोविज्ञान, पृ.220
3. डॉ. शशिकला त्रिपाठी, उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, पृ.102
4. मैत्रेयी की दीप अमरीक सिंह से बातचीत, 1जुलाई 2008, shodhganga. Inflibnet.ac.in

5.मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुंडल बसै, पृ.58
6.दीक्षित सूर्य प्रसाद, चाणक्य विचार, अप्रैल 1998, अंक-11, पृ.35
7.मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुंडल बसै, पृ.64
8.वही, पृ.313
9.मैत्रेयी पुष्पा, गुड़िया भीतर गुड़िया, पृ.98
10.वही, पृ.197
11.वही, पृ.243
12.मैत्रयी पुष्पा ओर उजैर खां की अंतरंग बातचीत, 24जून, shodhganga. Inflibnet.ac.in
13.दीक्षित सूर्य प्रसाद, चाणक्य विचार, मई 2009, अंक-14, पृ.7
14.मैत्रेयी पुष्पा से साक्ष्य, विज्ञान भूषण, 27 मार्च 2008,shodhganga. Inflibnet.ac.in
15.मैत्रेयी पुष्पा, गुड़िया भीतर गुड़िया, पृ.232
16.दीक्षित सूर्य प्रसाद, चाणक्य विचार, मई 2009, अंक-14,पृ.12

17.अब्दुल जलील बी. के., समकालीन हिंदी उपन्यास समय और संवेदना, पृ.193
18.राजेंद्र यादव, हंस, अप्रैल 1998, अंक-18, पृ.25
19.मैत्रेयी पुष्पा, गुड़िया भीतर गुड़िया, पृ.20
20.सूर्य प्रसाद दीक्षित, चाणक्य विचार, मई 2009, अंक-14, पृ.51
21.मैत्रेयी पुष्पा, सुनो मालिक सुनो, पृ.3
22.सूर्य प्रसाद दीक्षित, चाणक्य विचार, मई 2009, अंक-14, पृ.6
23.मैत्रेयी पुष्पा, सुनो मालिक सुनो, पृ.30
24.वही, पृ.48
25.वही, पृ.41
26.मैत्रेयी पुष्पा, सुनो मालिक सुनो, पृ.80
27.मैत्रेयी पुष्पा, चर्चा हमारा, मुख पृष्ठ
28.वही, पृ.19
29.वीरेंद्र यादव, हंस, अगस्त 2002, अंक-15, पृ.88
30.विजय बहादुर सिंह, वसुधा अंक 72, जनवरी-मार्च 2007,अंक-12, पृ.115
31.दीक्षित सूर्य प्रसाद, चाणक्य विचार, मई 2009, अंक-14, पृ.73
32.मैत्रेयी पुष्पा, फाइटर की डायरी, पृ.44
33.वही, पृ.65
34.वही, पृ.48